UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182881
UNIVERSAL
LIBRARY

हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—१०वाँ ग्रंथ

मुक्ति का रहस्य

लेखक
श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

प्रकाशक
साहित्य-भवन-लिमिटेड,
प्रयाग।

प्रथम संस्करण]

[मूल्य १॥)

प्रकाशक—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

CHECKED 1958

मुद्रक—
शारदाप्रसाद खरे,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ ?

'राक्षस का मन्दिर' लिखने के बाद मुझे यह नाटक 'मुक्ति का रहस्य' लिखना अनिवार्य हो उठा। कुछ तो इसलिये कि उस नाटक में जीवन के जिस पहलू पर मैंने प्रकाश फेंका था—सदाचार और परम्परा निर्वाह की जिन रूढ़ियों की ओर मैंने संकेत किया था—सब ओर से सही होने पर भी उनमें इतना ज़हर और इतना अनुताप था कि कुछ लोग उसे आसानी के साथ पचा नहीं सके। जिन चीज़ों के लोग अभ्यस्त नहीं थे—जिन समस्याओं की ओर से आंखें बन्द रखना ही लोग पसन्द करते थे, वे सब एक झटके में ही उनके सामने आगईं। 'राक्षस का मन्दिर' को पढ़कर कुछ मित्रों ने समझा कि मैं सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद अथवा दूसरे शब्दों में जीवन और जगत की सभी बातों को बुद्धिवाद और तर्क की सूखी कसौटी पर रखकर अपनी कलम से समाज की भयंकर हानि करना चाहता हूँ।

इस सम्बन्ध में मैं कुछ विशेष नहीं कहना चाहता। मेरा यह बहुत दिनों का विचार है कि सदाचार या दुराचार, ईश्वरवाद या अनीश्वरवाद के सिद्धान्त विवेक और इतिहास की कसौटी पर सदैव एक नहीं अनेक

रूप में देख पड़े हैं। भिन्न भिन्न काल और भिन्न भिन्न देशों में इन चीज़ों का कोई एक निश्चित रूप नहीं रहा। आज दिन सदाचार का जो रूप है, बीते ज़माने में वह सब से बड़ा दुराचार था और भविष्य में सदाचार का जो रूप होगा आज दिन उसकी कल्पना भी पंकिल समझी जाती है। आंख मूँद कर स्वीकार कर देने से तो श्रेयष्कर है आँख खोलकर अस्वीकार कर देना। आज दिन जिसे हम बुद्धिवाद या बौद्धिक मीमांसा कहते हैं उसके मूल में यही धारणा काम कर रही है। स्वीकार अथवा अस्वीकार कर देने मे ही किसी समस्या का अन्त नहीं होता। जो है अवश्य रहेगा। हम मानें या न मानें। हमारे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का आधार अन्धविश्वास या परम्परागत रूढ़ियों का निर्वाह न होकर हमारी आत्मा की—हमारे व्यक्तित्व की, अभिव्यक्ति होनी चाहिये। हमारा विवेक इतना जागरूक होना चाहिये कि हम जीवन की ऊपरी सतह को उठाकर देखें वहाँ चिरन्तन क्या है? चिरन्तन। सब कुछ चिरन्तन। स्त्री और पुरुष का चिरन्तन, सदाचार और धर्म का चिरन्तन, जीवन और मरण का चिरन्तन—चिरन्तन विश्व का चिरन्तन विधान। ईश्वर के विषय में 'हां या नहीं' काफ़ी नहीं हो सकता। उसका होना या न होना—हमारे जीवन या व्यक्तित्व में क्या उलट फेर करता है? वह भावना गम्य है या बुद्धिगम्य? शाब्दिक प्रार्थना या विधिवत पूजा का मतलब क्या है? क्या हम से अलग उसकी कोई प्रथक सत्ता है? यदि हम उसकी प्रार्थना या पूजा न करें तो क्या वह हमसे रुष्ट हो जायेगा? हमको दण्ड देने की व्यवस्था करेगा? "अगर हां" तो क्या उसके उपकरण भी वही हैं—जो मनुष्य के हैं? मानवी विकारों की सर्दी गर्मी से उसे भी छुट्टी नहीं? वह भय करने की चीज़ है या प्रेम करने की? बुद्धिवाद ईश्वर सम्बन्धी इन समस्याओं की मीमांसा करना चाहता है। इसी लिये साधारण समझ

के जीव उसमें अविश्वास या नास्तिकता की झलक देख पाते हैं। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि बुद्धिवाद स्वतः अनन्त विश्वास है। उसमें भ्रम और मिथ्या को स्थान नहीं। बुद्धिवादी ईश्वर की सत्ता में अपनी सत्ता और अपनी सत्ता में ईश्वर की सत्ता देखता है—वह उसे अपने से कोई प्रथक चीज़ नहीं मानता। वह उसकी उपासना इस लिये नहीं करता कि उसकी प्रार्थना या पूजा से नरक की यातनाओं से छुट्टी मिल जायेगी। बुद्धिवादी व्यक्तिवादी भी होता है। उसका स्वतन्त्र और पूर्ण विकसित व्यक्तित्व, नरक और स्वर्ग की कहानी सुनता भी है और नहीं भी सुनता—किसी भी दशा में उसे निर्लिप्त या निर्बन्ध रहना है—जीवन और जगत के विधि—विधान उस पर शासन नहीं कर सकते। जिस तरह पौदे सूर्य से पोषण पाने के लिये प्रार्थना नहीं करते, उसी तरह दीर्घ जीवन या सुख के उपयोग के लिये बुद्धिवादी ईश्वर से प्रार्थना नहीं करता। उसकी पूजा या उपासना घंटे दो घंटे सांझ या सवेरे की नहीं होती, उसकी प्रक्रिया उसके हृदय में प्रतिक्षण और प्रतिमुहूर्त चलती रहती है। इसलिये कि उसका जीवन तो विवेक और प्रकाश का है अन्धविश्वास या परम्परा निर्वाहका नहीं। उसे अपना रास्ता मालूम है इस लिये वह चलता रहता है—अन्धकार में टटोलना या इधर से उधर हो जाना उसके लिये सम्भव नहीं। ईश्वर उसके लिये प्रेम करने की चीज़ है—डरने की नहीं। इसी लिये ईश्वर सम्बन्धी प्रचलित धारणाओं के साथ वह कभी कभी ठिठोली कर बैठता है। लोग कहते हैं—वह नास्तिक है।

व्यक्तिगत सदाचार या समाजिक नीति-निर्वाह के सम्बन्ध में भी बुद्धिवादी कुछ इसी तरह की स्वतन्त्रता से काम लेता है। सचाई जो है—जिस रूप में है उसे तो वह स्वीकार कर लेता है, लेकिन उस पर कितने बेठन चढ़े हैं—उसे कितने कपड़े और गहने पहनाये गये हैं—

वह कितनी जंज़ीरों से बांधी गयी है इन बातों को वह स्वीकार नहीं कर सकता। स्त्री और पुरुष इस विश्व के दो पहलू हैं—वे एक होते हैं—प्रकृति के निश्चित नियमों के अनुसार, प्रकृति की निश्चित प्रणाली की रक्षा और प्रचार के लिये। उसे हम सन्तानोत्पत्ति नवजनन या प्रजायै गृहमेधिनाम् जो मन में आये कहलें—सत्य यही है। स्त्री और पुरुष के सम्मेलन में "नूतन सृष्टि" प्रकृति की यही शक्ति या समस्या प्रधान काम करती है। इस सम्बन्ध का सबसे बड़ा आकर्षण तब उत्पन्न होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों नवजनन की शक्तियों से भरपूर होते हैं— उस समय वे दोनों साथ साथ या समीप रहना चाहते हैं—प्रकृति के खिलौने प्रकृति की सर्वव्यापिनी इच्छाशक्ति में अपने को भूल जाते हैं—इस भूल जाने की क्रिया को संसार में एक सुन्दर नाम प्रेम या प्रणय दे दिया गया है। इस प्रेम या प्रणय के लिये बड़े बड़े अनर्थ होते हैं, विवाह के भिन्न भिन्न रूप, बन्धन और कर्तव्य की मिथ्या भावनायें। प्रकृति के गर्भ से प्रेम की बाढ़ आती है और चली जाती है—लेकिन अपने पीछे जो कीचड़ और दल दल छोड़ जाती है—मनुष्य की सारी ज़िन्दगी उसी में फसी रहती है। स्त्री और पुरुष के आकर्षण और सम्मिलन में जहां तक प्रकृति का चिरन्तन तथ्य है वहाँ तक तो बुद्धिवादी कोई एतराज़ नहीं करता लेकिन जहां तक ऊपरी आडम्बर और ढकोसले हैं—प्रियतम और प्रेयसी की रंगीन दुनियां और रङ्गीन स्वर्ग के सपने हैं—थोड़ी देर के वियोग या मान में मरने जीने की जो परिपाटी है—बुद्धिवादी इन बातों पर हँस पड़ता है—हँस पड़ता है। अब उसके हँसने का यह मतलब लगाया जाता है कि वह सदाचार का क़ायल नहीं।

यह सब मैंने इस लिये लिख दिया है कि 'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर, लिख चुकने के बाद मैं इस बात से इन्कार नहीं कर सकता

कि मेरी प्रकृति बुद्धिवाद की ओर हो चली है। बुद्धिवाद किसी तरह का हो—किसी कोटि का हो समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता। बुद्धिवाद में शूगर कोटेड कुनैन की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो तीक्ष्ण सत्य है। उसका घाव गहरा तो होता है लेकिन अङ्ग भङ्ग करने के लिये नहीं, मवाद निकालने के लिये—हमारी प्रसुप्त चेतना को जाग्रत कर हमारे जीवन में नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिये। योगियों का मत है कि विचार की शृंखला अनन्त आकाश में क्षोभ और कंपन पैदा करती है—बुद्धिवाद स्वतन्त्र विचार की स्वतन्त्र धारा है—वह जीवन का अनन्त वेग और अनन्त प्रकाश है। अगर संयोग से कला के मूल में बुद्धिवाद की धारणा हुई तो कला को एक प्रकार का अक्षय आधार मिल जाता है—एक प्रकार का ऐसा आधार जिसमें मनुष्य और उसके अनन्त वातावरण को हिला देने की ताक़त है। हाँ हिला देने की—और इस हिलने में केवल मनुष्य के मनोवेग या अस्थायी लालसायें हीं नहीं हिलतीं, बल्कि उसमें वह सब जो अनश्वर और अनादि है—एक साथ ही हिल उठता है—उसकी चेतना क्षुब्ध होकर उसके चारों ओर फैल जाती है—जीवन का कारागार खुल जाता है—वह अपनी सीमा का अतिक्रमण कर अपने से बहुत ऊँचे पहुँच जाता है. यही बुद्धिवाद है, यही कला है।

इन दिनों हमारे समालोचक साहित्य या कला के भीतर सब से पहले यह खोजने लगते हैं कि इन चीज़ों में लोकहित का उपदेश या सदाचार की व्याख्या कहाँ और किस रूप में हुई है। सदाचार का नाम लेकर कला के विषय में इस तरह के जीव बहुत कुछ कह जाते हैं—हालां कि सदाचार का नाम भी ये इसीलिये लेते हैं कि इन्हें कला के विषय में कहना तो आता नहीं। अब कुछ न कुछ तो कहना होगा ही। इसलिये सदाचार की बात चलती है—सत्य बोलो, चोरी न करो,

ईश्वर की पूजा करो—इसी तरह की बातें कुछ इधर उधर कर लम्बे शब्दों और लम्बे वाक्यों में कही जाती हैं। लेकिन इन बातों से कला का सम्बन्ध ? कलाकार इस तरह का उपदेशक तो नहीं है ? वह जो कुछ भी कहता है या कहना चाहता है—उसके निजी प्रयोग की बातें होती हैं। क्या होना चाहिये या क्या नहीं होना चाहिये ? इन बातों का सवाल तो यहाँ नहीं उठता। यहां तो जो है, है। कला जो वास्तव में कला है इस तरह के नियमों से परे की चीज़ है। वह तो अनन्त के इस पार से उस पार होने वाले धूमकेतु की तरह है। सम्भव है उसका वेग उपयोगी हो, यह भी सम्भव है कि उसमें किसी तरह की प्रत्यक्ष उपयोगिता न हो—यहां तक कि विश्व की प्रचलित परिपाटियों में वह हानिकर भी हो उठे। लेकिन वह वेग है—प्रवाह और अग्नि है। वह स्वर्ग से उतरता हुआ प्रकाश है और इसीलिये पवित्र है, इसीलिये उपयोगी है। वह उस सूर्य की तरह है जो न सदाचारी है और न दुराचारी, न नास्तिक है और न आस्तिक। वह वह है—जो है। उसका काम है विस्तार के अन्धकार को प्रकाशित कर देना। और यही काम कला का है। जीवन का भग्नावशेष कला के पर्दे में छिपा रहता है। इसलिये यह अनन्त सहानुभूति है जिसकी एक एक नज़र में कल्याण की दुनियां बसती चलती है, लेकिन तब जब उस कला का आधार बौद्धिक विवेक और जागरण होता है, व्यक्तिगत मनोवेगों का रुदन, ज्वर और सन्निपात नहीं—जब सारे संसार का दुख कलाकार का दुख और सारे संसार का सुख कलाकार का सुख होता है—जब जीवन की नदी उसके रक्त से लाल हो उठती है—जब उसकी अपनी आत्मा विश्व की आत्मा में मिलकर लय हो जाती है। आज के अधिकांश कलाकार जब अपने काँपते हुये हाथ और लालसा से जर्जरित आत्मा के सहारे कला का निर्माण करने चलते हैं—तब हँसने

में और रोने में, जीने में और मरने में, सोने में और जागने में अपने सुन्दर शब्द और सुन्दर वाक्य ख़तम कर डालते हैं और कला के मन्दिर के नाम पर जिस इमारत का निर्माण करते हैं उसमें, अतृप्त वासनाओं और नग्न मनोवेगों की शराब चलती रहती है— फल यह होता है कि चेतना यदि सदैव के लिये नहीं तो बहुत दिनों के लिये सो जाती है। विचारों की कमी के कारण इन्हें हँसना खूब आता है और हँसते ही हँसते लोगों में ये उन बीमारियों को पैदा कर देते हैं जिन्हें हम कह सकते हैं— प्रयत्न की ओर से भय, आनन्द की ओर आँख मूंद कर दौड़ना, वासना मय हृदय और विचार, उनकी संकीर्ण मनुष्यता—वह सब जो उनके जीवन बल को पीछे खींचता है जो उनकी कर्तृत्व शक्ति को मार डालता है। अफ़ीम के नशे में वे उनके मस्तिष्क को अधमरा कर देते हैं, फिर तो उनको मालूम रहता है कि उसके बाद ही मृत्यु है, लेकिन वे इसे मानते नहीं। लेकिन मुझे तो यही कहना है कि जहाँ मृत्यु है वहाँ कला नहीं। कला तो जीवन का वसन्त है। सत्य की ओर से आँखें मूंद कर आनन्द की ओर दौड़ना आनन्द को और दूर कर देता है। लेकिन यहां तो सत्य और आनन्द दोनों को छोड़ कर, दुनियाँ विनोद की ओर बढ़ रही है—और इसका सब से बड़ा साधन हो रहा है कला का व्यापार। यह चाहे और जो कुछ हो लेकिन कला तो नहीं है। केवल कला या साहित्य के ही क्षेत्र में नहीं, विनोद की यह भावना समाज-सेवा या सुधार के क्षेत्र में भी काम कर रही है। आज के सुधारक या समाज सेवक विचित्र प्रकार के विनोदी प्राणी हैं—वह जो कुछ भी करते हैं सिर्फ़ तबियत ख़ुश करने के लिये, अपनी क्षमता के प्रदर्शन के लिये। जीवन की गहरी तह तक पहुँचने का प्रयत्न तो दूसरी बात है, वे तो एक बार आँख खोल कर ईमानदारी के साथ उसकी ओर देखते भी नहीं। सदाचार के नाम

पर जितना शोर ये मचाया करते हैं, किसी तरह भी उस सदाचार से भिन्न नहीं होता जिसकी शिक्षा छोटे दर्जे के विद्यार्थियों को विद्यालयों में दी जाती है। कला और साहित्य में भी इस तरह के व्यक्ति वही सदाचार खोजते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण और संक्षोभ्य हृदय से विचार करने का अवसर तो उन्हें मिलता नहीं, इसलिये कला और साहित्य में जहाँ कहीं जीवन की भीतरी विभूतियों का उद्घाटन होता है या विराट जीवन का निर्माण होता है, ये घबड़ा उठते हैं। उनकी धारणा भी इन्हें असह्य हो उठती है। इब्सन ने कहा था—"जिसे अपनी कला में जीवित रहना है, उसके भीतर कुछ और होना चाहिये, उसकी साधारण प्रतिभा से कुछ विशेष व्यापक भावनायें और व्यापक शोक, जोकि उसके जीवन को भरकर एक ओर घुमादें। अन्यथा वह सृष्टि तो नहीं कर सकता—हां पुस्तकें लिखता रहेगा।" कला के मूल में जब तक जीवन की व्यापक भावना नहीं रहती वह पूरी भी नहीं हो पाती। कला की सफलता जीवन को पकड़ लेने में—उसमें मिल जाने में है, उससे विद्रोह करने में नहीं।

मैं बुद्धिवादी क्यों हूं? इस सम्बन्ध में कहा तो बहुत कुछ जा सकता है, लेकिन मैं उतनाही कहूँगा जितने में कि प्रस्तुत नाटक की भूमिका का काम भी चल जाय और मेरे सम्बन्ध में पाठकों के हृदय में मिथ्या धारणायें भी न उत्पन्न हों। मिथ्या धारणाओं की बात मैं इस लिये कह रहा हूं कि 'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर' की आलोचना करते समय एक आलोचक ने लिख दिया था "पर यदि मिश्र जी भी अनीश्वर वाद की ओर बढ़ रहे हों तो दूसरी बात है" इन्हीं की देखा देखी कुछ और सज्जनों ने भी ऐसी ही बातें कुछ हेर फेर के साथ कह दी थीं। ईश्वर सम्बन्धी मेरे जो विचार हैं, उन्हें मैं अपने ही तक रखना चाहता हूं—इस लिये कि उन विचारों का सम्बन्ध केवल

मेरे व्यक्तित्व और मेरी आत्मा से है—उनके भीतर मेरा निजत्व इस हद तक व्याप्त हो चुका है कि उनका अलग करना भी मेरे लिये एक कठिन काम होगा। इसके अतिरिक्त ईश्वर के सम्बन्ध में बहस या तर्क करना भी मेरी समझ में नास्तिकता या उससे कहीं बुरी संस्कार हीनता है। मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक मेरे कहने से नहीं बनेगा। इस सम्बन्ध में मैं अपने अन्तर्जगत से कुछ पंक्तिया उधृत कर देता हूँ, इस आशा में कि सम्भव है इन पंक्तियों से मेरी उस मित्र मण्डली को मेरी धार्मिक धारणा का पता चल सके—जिसने कि हँसते हँसते नास्तिक बना कर मुझे एकदम जीवन-मुक्त कर देना चाहा था!

"यह उपासना कभी न बाहर होवे अन्तस्तल की --
नहीं समायेगी अन्तिम सीमा में भी इस थल की।
जो कुछ आकर स्वर्ग बना है इस जगती में मेरा—
इस उपासना ने ही उसको है चिर दिन से घेरा॥

और————————

जिसकी पूजा में ये मेरे बीत चुके दिन इतने—
आज अयाचित वर देने आया वह मुझको कितने।
नहीं चाहता मैं वर लेकर तजना अपने मनसे—
उस अनादि पूजा को उलझी रहे सतत जीवन से॥

कुछ और आगे बढ़ कर—

जीवन सागर के उस तट पर अपने सुन्दर जगकी—
सृष्टि अनोखी की है तूने जहां न रेखा मग की।
नीचे सिन्धु भर रहा आहें हँसते नखत गगन में—
सब से दूर जल रहा दीपक तेरे भव्य—भवन में॥

अथवा मेरे तपोवन से—

विश्व-विभव, अन्तर्विभूति, उत्सर्ग—मिलन को मेरे—
कब तक चलते और रहेंगे जगके सपने घेरे ?
उतर न आओ तुम किरनों से होकर जग के स्वामी—
मैं चल पड़ूं, सुला जीवन की ममता अन्तर्यामी !

मेरे कृपालु मित्रों को मेरी ज़िन्दगी की गतिविधि से या मेरे हृदय के संगीत से [जिसका थोड़ा बहुत आभास इन ऊपर की पंक्तियों से मिल सकता है] इस बात का पता लगा लेना चाहिये कि मैं नास्तिक हूँ या आस्तिक। सच बात तो यह है कि उन्हें इसके पता लगाने की भी कोई ज़रूरत नहीं है . उसका पता लगाना या पता लगाने की कोशिश करना भी एक प्रकार का अपराध होगा। इसलिये कि वह सत्य तो मन और वचन से परे की वस्तु है, उसकी पहचान तो होती है आत्मानन्द या अनुभूति से—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दो ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कदाचन।

और उसके बाद मनुष्य भय और संशय से निवृत्त हो जाता है। धार्मिक विश्वास का मूल जैसा कि लोगों को भ्रम है, बाहरी व्यवस्था में नहीं है और न तो इस बात में है कि हमारे आस पास लोग किसी देवी देव की पूजा करते हैं—कौन कौन व्रत रखते हैं या किस विधि से दान करते हैं। मेरे मस्तिष्क और मन में शायद कोई ऐसी बात है जोकि मुझे धर्म की प्रदर्शिनी के भीतर पैर नहीं रखने देती। भिन्न भिन्न धर्मों में उपासना की जो प्रचलित प्रणालियां हैं—उन्हें मैं discipline केवल नियमन कह सकता हूँ—साधारण लोगों की दुनियादारी में इन बातों से लाभ हो सकता है—लेकिन जहां व्यक्तिवाद का यह अटल सिद्धान्त आ पड़ता है "मैं स्वयं अपनी कोटिका हूँ" वहां

धर्म और ईश्वर की भावना भी व्यक्ति की ज़िम्मेदारी पर ही छोड़ देनी चाहिये। धर्म का निर्णय किसी विशेष मतकी मौन स्वीकृति या जन्म और जाति की मर्यादा में नहीं हो सकता। ऐसा करना तो जान बूझ कर आध्यात्मिक कारागार बनाना होगा। धार्मिक संस्कृति का सामुहिक रूप सदैव उनके लिये होता है जिनकी कल्पना स्वतन्त्र व्यक्तित्व या स्वतन्त्र चिन्तन की ओर नहीं पहुँचती—जिनका अपना कोई रास्ता नहीं होता—जिनके विवेक का अन्त इसी में है "जिधर सब चलेगें उधर हम भी"। सच्चा धर्म और सच्चा प्रकाश तो वह दशा है—जहां पहुँच जाने पर अधर्म या अंधकार से फिर भेंट न हो। आत्म अनुभूति की वह दशा—जहां सुख, दुख, प्रेम, घृणा, प्रकाश, अन्धकार या जीवन और मृत्यु का भेद मिट जाता है—मनुष्य द्वैत की माया से निकल जाता है। कहीं पढ़ने में आया था—हमारी जातीय संस्कृति का शायद सुनहला सवेरा था। कोई ब्राह्मण अपनी तपस्या में बहुत दिनों से लीन था—भूख, प्यास, इच्छायें, वासनायें एक एक कर सब छूट चुकी थीं। जिस किसी ने भी देखा—ब्राह्मण देख पड़ा, जैसे तपस्या का साकार स्वरूप। देवता विस्मित हो उठे, साधक सिहर उठे। अपसराओं का शृंगार फीका पड़ गया। माया के फन्दे शायद टूट गये। लेकिन ब्राह्मण चाहता क्या था? मुक्ति? नहीं। तब? दिग्विजय। ब्राह्मण का अहंकार जाग उठा। उसने सोचा त्रिलोक में उससे बड़ा तपस्वी कोई नहीं? उसने असाध्य साध्य किया। उसके आगे किसी की गति नहीं। ब्राह्मण का अहङ्कार उग्र होता गया। उसे देख पड़ा जैसे उसके तप के तेज से सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ रहा है, वायु की गति बन्द हो रही है, सृष्टि थरथरा रही है। यह अहङ्कार, पतन का तूफ़ान था। आकाश वाणी हुई—'ब्राह्मण तेरा गर्व मिथ्या है—किस बात पर तेरा अहङ्कार इस तरह क्षुब्ध हो उठा? तुझ से बड़ा तपस्वी मिथिला का राजा जनक

है। जा उसके यहां और उससे उपदेश ग्रहण कर'। ब्राह्मण मज़बूर था। आकाशवाणी हुई थी—उसे जाना पड़ा। भांति भांति के संकल्प और विकल्प, सन्देह और शंका उसके भीतर उठती रहीं। राज महल के फाटक पर पहुँचते ही बुलाहट हुई राजा साहब अन्दर बुला रहे हैं। ब्राह्मण ने सोचा यह राजा क्षत्रिय होकर द्वार पर आये हुये ब्राह्मण का स्वागत स्वयं नहीं करता। और यही तपस्वी—ब्राह्मण से श्रेष्ठ तपस्वी? आकाशवाणी की सचाई में भी सन्देह होने लगा। अन्त पुर में पहुँच कर ब्राह्मण ने देखा—राजा पलङ्ग पर अपनी स्त्री के साथ बैठा है, वासना और विनोद की सामग्री.. .. यह क्या? राजा ने तो ब्राह्मण के सामने स्त्री का चुम्बन कर लिया—मर्यादा की इतनी महान अवहेलना? क्षण भर के लिये ब्राह्मण की आंखें शायद घृणा और क्षोभ से बन्द हो गईं। दूसरे ही क्षण जो कुछ देखा अपूर्व था—ब्राह्मण सिहर उठा। शायद उसके पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसकने लगी। राजा जनक का एक हाथ स्त्री के गले में था और दूसरा था धधकती हुई अँगीठी पर। हाथ जल रहा था—चर्बी फूट रही थी—हड्डियां तड़तड़ा रही थीं। शरीर से जितनी साधना और तपस्या हो सकती थी सब ब्राह्मण ने समाप्त कर दी थी। इस तरह की तपस्या तो उसने नहीं की—लेकिन यह शरीर की नहीं आत्मा की तपस्या थी। राजा जनक ने कहा "ब्राह्मण यही मेरी तपस्या है। न तो स्त्री के चुम्बन या सहवास का मेरी आत्मा को कोई सुख है और न इस अंगीठी पर जलने का दुख। मेरी आत्मा सुख, दुख से परे की चीज़ है। तुम ब्राह्मण हो और मैं क्षत्री हूं या मैं राजा हूँ और तुम तपस्वी हो इस तरह के सांसारिक भेद आत्मअनुभूति के रास्ते में रुकावट पैदा करते हैं।"

यही महान धर्म है। यही महान सदाचार है। यह स्वतंत्र आत्मा का स्वतंत्र प्रकाश है। यहां भ्रम नहीं है, भुलावा नहीं। आत्म अनुभूति

और आत्मप्रकाश—इसी में सब कुछ है, ईश्वर भी है—सदाचार भी है, जीवन की अपूर्णता मिट जाती है—पूर्णजीवन और अनन्त जीवन दार्शनिक रहस्य न रह कर प्रत्यक्ष सत्य हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक समन्वय या सामञ्जस्य बुद्धिवाद का महान धर्म है। यह ज़रूरी नहीं कि बुद्धिवाद सदैव तर्क के सहारे खड़ा रहे। जो लोग बुद्धिवाद को पश्चिम से आई हुई एक भयंकर बीमारी समझते हैं—वह भूल करते हैं। सम्पूर्ण उपनिषत साहित्य और वेदांत मीमांसा इसी बुद्धिवाद पर अवलम्बित है। उपनिषदों में जिस व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आध्यात्मिक सहिष्णुता या व्यापकता पर ज़ोर दिया गया है, वह अगर बुद्धिवाद नहीं तो है क्या? इसी मतलब में मैं अपने को बुद्धिवादी कहता हूँ। धर्म में, साहित्य में, कला में और सदाचार में मैं उन्हीं बन्धनों को मान सकता हूँ, जो सदैव से हैं, जो हमारे ही रक्त और हमारी ही आत्मा से पैदा होते हैं, जो चिरंतन हैं इसलिये उपयोगी हैं। हमारा विवेक जिनके साथ समझौता कर लेता है—हमारे व्यक्तित्व के विकास में जो किसी तरह की रुकावट नहीं पैदा करते।

मेरा धर्म और सदाचार तो रचयिता का धर्म और सदाचार है। मैं तो समझता हूँ कि जब तक साहित्यकार अपनी सीमा को पार कर, अपने सुख, दुख से ऊँचे उठकर, संसार में जो कुछ है पाप, पुण्य, सदाचार, दुराचार, धर्म, अधर्म विष और अमृत, सब को समझ नहीं लेता, सब का अनुभव नहीं कर लेता—तब तक उसे विश्वव्यापी और सनातन आधार नहीं मिल सकता। वे चीज़ें जो अक्षय और अनन्त हैं सामने नहीं आ सकती। इसलिये ज़िन्दगी की कोई भी संकीर्ण परिपाटी, धर्म या सदाचार की कोई भी निश्चित कसौटी, साहित्य और कला की कोई भी प्रभावशालिनी व्यवस्था आंख मूँद कर स्वीकार कर लेना यही नहीं कि व्यक्तिगत विकास में बाधा डालेगी,

एक प्रकार से घातक भी होगी। घातक इस लिये होगी कि रचना के नये उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा। यह बात मैं परिवर्तन की आन्तरिक एकता में विश्वास रखता हुआ लिख रहा हूँ, कोई यह न समझ ले, कि मैं जीवन को केवल परिवर्तन समझ रहा हूँ। परिवर्तन की आंतरिक एकता सत्य भेद नहीं होने देती [लेकिन यह तो कभी होता भी नहीं] इसका काम है रूप भेद करना और इसी लिये मैं लिख रहा हूँ कि—"रचना के नये उपकरणों के साथ उसका मेल नहीं हो सकेगा।" बुद्धिवाद को यह तो मालूम है कि जो सत्य है सदैव आधुनिक है. लेकिन उसे व्यक्त करने के सभी तरीके आधुनिक नहीं हैं। इसीलिये बुद्धिवाद को जब किसी सत्य की अभिव्यक्ति करनी होती है तो वह वातावरण और परिस्थित का ध्यान रखते हुये सत्य की अभिव्यक्ति करता है।

जो लोग यह समझते हैं कि बुद्धिवादी केवल संहार कर सकते हैं—निर्माण करना उनका काम नहीं—वे जगत और सृष्टि के मूल में ही मिथ्यावाद और भ्रम का आरोप करते हैं। सृष्टि का मेरुदण्ड शायद उनकी समझ में चेतना और प्रकाश का नहीं बना है। उनकी नज़र अज्ञान और अन्धकार के आगे नहीं बढ़ सकती। मनुष्य की सृष्टि यदि इस अनादि सृष्टि की छाया से ही निर्मिति होती है तो उसके मूल में चेतन है अचेतन नहीं। इसी चेतन को हम बुद्धिवाद कहते हैं। इस समय और सीमा के निर्धारित जगत में हम जो कुछ देखते हैं—जो कुछ सुनते हैं जो कुछ अनुभव करते हैं, उसे हम सिर झुका कर स्वीकार कर लेते हैं—यह साधारण बात है। लेकिन जब हम उसकी तात्विक विवेचना करते हैं—उसे हर पहलू से उलट पलट कर देखना चाहते हैं तब हमें भावना के जगत से निकल कर विवेक के जगत में जाना पड़ता है। हमारी जंज़ीरें उतनी कड़ी नहीं रहतीं—

कभी कभी तो टूट जाती हैं। हमारा दृष्टिकोण विस्तृत हो उठता है, संसार जैसे विवेक और सहानुभूति से भर उठता है। मनुष्य अपने सुख—दुख का उत्तरदायी स्वयं है। यदि वह विचार करे तो उसकी कठिनायाँ बहुत कुछ कम हो सकती हैं। बुद्धिवाद इस रहस्य को स्पष्ट कर देता है। सभ्यता की जटिलता के साथ ही साथ मनुष्य का जीवन भी जटिल होता जा रहा है। समाज और साहित्य में धर्म और सदाचार में उखाड़ने और बैठाने की क्रिया चल रही है। मनुष्य रूढ़ियों के अन्धकार से निकल कर विवेक के प्रकाश में आ रहा है। लोग समझ रहे हैं कि बीते ज़माने में धर्म और सदाचार के नाम पर भयङ्कर अधर्म और भयङ्कर दुराचार हो गये थे। इसलिये यह युग बुद्धिवाद की वकालत कर रहा है। हममें जो सब से साधारण है उसकी आत्मा में भी असीम बंद है। तब ? उदारता और सहिष्णुता ! या एक शब्द में सहानुभूति। चेस्टर्टन ने कहा है "साहित्य का उद्देश्य जीवन का प्रतिरूप खड़ा करना नहीं—उसमें सहानुभूति भरना है।" टालसटाय और रोम्याँरोलां, अनातोले फ्राँस और बरनर्डशा इसीलिये सफल हो सके हैं। उनके चरित्रों में, उन चरित्रों की भलाई—बुराई में, धर्म और अधर्म में मानव हृदय की सहानुभूति स्पष्ट देख पड़ती है। इसलिये बुराई करने वाला हमारे हृदय को जितना आविर्भूत करता है उतना ही आविर्भूत करता है भलाई करने वाला भी ! बुराई और भलाई के मेल से ही तो ज़िन्दगी बनी है। बुद्धिवाद में बुराई और भलाई की परिभाषा ही भिन्न है। जीवन की व्याख्या में बुराई और भलाई रात और दिन की तरह मिली हैं—और यही सत्य है।

जहां तक मैं समझता हूँ—बुद्धिवाद हमारे यहां कोई नई चीज़ नहीं है। हमारे संस्कार का आधार ही बुद्धिवाद या विवेक जनित प्रवृत्ति है। यूरप में यह प्रणाली ज़रूर नई है। रोमान्टिक लेखकों ने यूरप में शब्दों

के सपने में जीवन की सचाई की ओर से आँखें बन्द कर भावनामय भ्रमवाद या मिथ्यावाद का प्रचार किया था। साहित्य और कला के नाम पर सम्भव असम्भव सब कुछ एक कर डाला था। इसके प्रति विद्रोह की भावना उठी। इब्सन के नाटकों में सब से पहले ज़िन्दगी की बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या शुरू हुई और उसके बाद बुद्धिवादी लेखकों की नामावली बढ़ने लगी—बाहरी उपकरणों का उपहास कर भीतरी प्रवृत्तियों की चर्चा चली। साहित्य और जीवन के बीच में जो खाईं थी उसे भर कर "जीवन के स्वर में" साहित्य का निर्माण होने लगा। कुछ लोगों का मत है कि पाश्चात्य सभ्यता के नाश करने के दो महान कारण रहे हैं—पहला तो बरनर्डशा और दूसरा विगत महायुद्ध। विगत महायुद्ध ने यूरप की सैनिक क्षमता और भौतिक शक्ति का नाश कर दिया। बरनर्डशा ने यूरप की मानसिक और सामाजिक शक्ति का नाशकर दिया। मतलब यह है कि यूरप में मनुष्य का जीवन इतना कृत्रिम और भावना प्रधान हो गया था कि बरनर्डशा के व्यंग उसे खोखला कर बैठे। यह काम यूरप में बरनर्डशा की बौद्धिक कला ने किया। यूरप का दुराचारमय गन्दा जीवन लेकिन साथ ही साथ नैतिक ढोंग बरनर्डशा के लिये असह्य हो उठा। उन्होंने जो कुछ था—जैसा था साफ़ कर दिया! पाश्चात्य सभ्यता के आकर्षक पर्दे के भीतर कितनी बुराइयां थीं—कितना खोखलापन था—बरनर्डशा ने खोल कर दिखला दिया। आज यूरप में एक ओर तो वह महर्षि हैं—दूसरी ओर भयङ्कर प्रवृत्ति वादी—सदाचार और धर्म की जड़ काटने वाले, स्वर्ग और नरक की मिथ्या भावना मिटाने वाले। ख़ैर यही तो जगत है। यही जीवन है। हमारा मतलब यहां बरनर्डशा से नहीं—उस बुद्धिवाद से है जो हमारे साहित्य के उन समालोचकों की नज़र में बदनाम हो रहा है—जिनकी भावुकता भयङ्कर है, लेकिन विवेक दयनीय!

हमारे साहित्य में निर्माण होने लगा है। लक्षण तो शुभ हैं लेकिन अभी समझदारी की ज़रूरत है। ग्येते ने कहा था—"रचयिता के लिये सब से पहली बात है स्वस्थ होना, अगर वह बीमार है तो उसे स्वस्थ हो कर क़लम उठानी चाहिये" और "स्त्रियां साहित्य और कला के साथ जो चाहें कर लें, लेकिन पुरुषों को तो संयम के साथ काम लेना चाहिये।" हमारे लेखकों को ग्येते का यह कहना समझ लेना चाहिये। साहित्य और कला में अपनी बीमारियों को दिखला देना हमारे लिये अच्छा नहीं है। जिस कमी को हम अपने जीवन में अनुभव कर रहे हैं—वह साहित्य का विषय नहीं है। उसे मार डालना होगा! कोई रोचक कथा गढ़ कर उसे नीचे ऊपर से जला देना—फूंक देना बुरा है। हमारे साहित्य में अधिकांश यही हो रहा है। हमारे लेखक तानसेन की रचना करने चलते हैं—लेकिन भावावेश में रास्ता भूल जाते हैं और नूरजहां का निर्माण कर बैठते हैं। प्रतिभा की सफलता जीवन—बल्ल के अनुसार नापी जाती है—कला के अपूर्ण यन्त्र से जीवन का जगा देना ही कला है—जीवन के वे सत्य जो हैं, सामने लाये जायं, शेष छोड़ देना चाहिये। अपने भीतरी विकारों और वासनाओं को सजाकर साहित्य का स्वर्ग बना देना—गन्दा है, गन्दा है। नैतिक महत्व अनुभव करने में और संयम करने में है। प्रेम के नाम पर साहित्य में जो देखने को मिल रहा है—प्रेम की हत्या और वासना का नृत्य है। हमारे लेखक प्रेमी और प्रेमिका को पकड़ कर साहित्य की सड़क पर नंगा छोड़ देते हैं। प्रेम के लम्बे लम्बे व्याख्यान झाड़े जाते हैं—हँसना रोना बहुत होता है—असंगत और असम्भव का ख्याल नहीं रहता, सब कुछ होता है—लेकिन वह नहीं होता—जिसे जीवन कहते हैं। स्वाभाविक जीवन की स्वाभाविक धारणा न होने की वजह से कल्पित जीवन की कल्पित पहेली हमारे विवेक को मन्द कर देती है। यहां मुझे बीथोफ़ेन का एक

वाक्य याद पड़ रहा है—"अगर हम जीवन के प्रवाह को जीवन की मर्ज़ी पर छोड़ दें, तब तो फिर सर्वोच्च के लिये क्या शेष रहेगा"। लेकिन यहाँ जीवन की मर्ज़ी समझने की कोशिश नहीं हो रही है—सर्वोच्च तो अभी बहुत दूर की चीज़ है।

मेरा अपना अनुभव जहां तक है, लेखक की सब से बड़ी चीज़ उसकी भावुकता नहीं—उसकी ईमानदारी है—वह साधक है, दलाल नहीं। जीवन की प्रयोगशाला [जैसा कि मैंने राक्षस का मन्दिर की भूमिका में भी लिखा था] के बाहर साहित्य या कला की विभूतियां नहीं मिल सकतीं। "कला की चरम सीमा" जैसा कि मोशिये रोलां ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'चौदहवीं जुलाई' की भूमिका में लिखा था "कल्पना के साथ नहीं—जीवन के साथ है।" हमारे अधिकांश लेखक ज़िन्दगी की ओर से आंखें बन्द कर कल्पना और भावुकता का मोह पैदा कर जिस नये जगत का निर्माण कर रहे हैं उसमें ज़िन्दगी की धड़कन नहीं है। मनुष्य की आत्मा की बात कौन कहे—वहां तो मनुष्य का रक्त माँस भी नहीं मिलता! शायद मोम के रँगे पुतलों से लेखक जो चाहता है कराता है, लेखक जब चाहता है पुतला हँस देता है, रो देता है, व्याख्यान देने लगता है या प्रेम करने लगता है—उसकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। कल्पना का जीव कल्पना के आगे नहीं बढ़ता। वास्तविक जगत के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन वास्तविक जगत की धारणा साधारण चीज़ नहीं—हर कोई क़लम पकड़ने वाला उसे सम्हाल नहीं सकता। यह काम तो उसका है जो महादेव की तरह ज़हर पचा कर मृत्युञ्जय हो सके—यही काम है इस युग के कलाकार का या जैसा कि मैंने सन्यासी की भूमिका में लिखा था तत्व-दर्शी कलाकार का। ऐसे समय में जब कि साहित्य में झूठी भावुकता और गन्दे मनोवेगों का तूफान चल रहा है—साहित्य और कला के

नाम पर विकारों की सजावट हो रही है—"तत्वदर्शी कलाकार"—यह मैं क्या कह रहा हूँ ? आज नहीं, इसका पता कल चलेगा मैं क्या कह रहा हूँ। जीवन वह चीज़ नहीं—जिसकी छुरी हमारे कलेजे के पार न हो जाय। किसी न किसी दिन यह ज़रूर होगा। ज़िन्दगी की व्यवस्था में क्षमा तो किसी को मिलती ही नहीं। इसके साथ जो जितनी ही ईमानदारी के साथ पेश आता है, उसकी यातनायें उतनी ही कम होती हैं। रचयिता का उत्तरदायित्व ईश्वर का उत्तरदायित्व है—अपनी एकान्त साधना में अपनी ही आत्मा का अनुसरण करना लेखक के लिये विशेष उपयोगी होता है। संसार की कैसी छाप उसकी आत्मा पर पड़ रही है—सचाई के साथ उसे यही दिखला देना है—इसके आगे तो वह कुछ कर भी नहीं सकता—लेकिन इतना कर देने पर उसके लिये फिर कुछ शेष नहीं रह जाता। साहित्य या कला व्यसन नहीं, आवश्यकता है, मनुष्य के हृदय की—मस्तिष्क की और आत्मा की। जीवन का विकास ज्यों ज्यों होता जाता है—कला की आवश्यकता भी उसी परिमाण में बढ़ती जाती है—यह आवश्यकता ऐसी नहीं है जो हटाई जासके या जिसके बिना भी काम चल सके। अपनी अपूर्णता मिटाने के लिये मनुष्य जिस रास्ते की खोज सदैव से करता आया है—वह रास्ता इसी कला के भीतर से होकर गया है।—इस रास्ते में दुर्लंघ्य पर्वत हैं, भयङ्कर नदियां हैं, अगाध समुद्र हैं, सुन्दर झरने हैं, बसन्त के फूले हुये बन हैं, शरत् के तालाब हैं, हरे भरे मैदान हैं, और धू धू करते हुये मरुस्थल भी हैं। कलाकार को यह सारा रास्ता तै करना है, उसकी सफलता कहीं पहुंचजाने में नहीं, सब कुछ पार कर जाने में है—हां सब कुछ पारकर जाने में और तभी उसकी कला समय और सीमा का अतिक्रमण कर शाश्वत और सनातन हो सकेगी। इसी लिये मैंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कलाकार की सबसे बड़ी विभूति

उसकी ईमानदारी है। जो है नहीं उसकी कल्पना करना या जैसा है नहीं वैसा दिखला देना—रोज़गार या सभ्यता की नज़र से उपयोगी चीज़ हो सकती है—लेकिन जीवन और सचाई की नज़र में तो वह केवल हानिकर नहीं—संहारक भी है। संहारक इस लिये कि उसमें ज़िन्दगी के समझने की कोई बात नहीं होती उसमें कोई ऐसी बात नहीं होती जिसे पकड़ कर हम कह सकें—'पा गये, पागये, जिसकी खोज में पड़े थे पागये'। कला की कोई भी चीज़ मनुष्य के हृदय में अपने लिये कितनी जगह बना लेती है—उसका कितना अंश मनुष्य का अपना अंश हो उठता है—मनुष्य के रक्त और मांस में मिल जाता है, यही असल चीज़ है। यही कलाकी सफलता है। और इसी चीज़ को मैं कलाकार की ईमानदारी कह रहा हूँ। यह ईमानदारी भावावेश या रोमेन्स में नहीं मिल सकती—क्योंकि वहां तो जीवन की व्याख्या नहीं—मिथ्या सजावट है। जो दिल और दिमाग़ के कमज़ोर हैं, बच्चे की तरह जो पकड़ना सब कुछ जानते हैं, लेकिन छोड़ना कुछ भी नहीं—उनके फुसलाने की बातें हैं। कलाकार की बौद्धिक अभिव्यक्ति अथवा दूसरे शब्दों में तात्विक मीमांसा—समस्याओं और सिद्धान्तों, जीवन और जगत की भिन्न भिन्न वस्तुओं का व्यक्तिगत अनुभूति और प्रवृत्ति के अधार पर निराकरण, सुविधा और शासन के नाम पर अन्धविश्वास और मिथ्या परम्परा की वे बातें जो हैं नहीं या होती नहीं या जिनकी वजह से मनुष्य का स्थायी कल्याण होना असम्भव है, उनका पर्दा उठा कर उनकी असलियत खोल देना—मेरी समझ में उसकी ईमानदारी है। वह जो कुछ देखता है अपनी नज़र से देखता है उसका अपना मन उसे किस रूप में ग्रहण कर रहा है—उसकी आत्मा पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा है—उसे कह देना है; सम्भव है संसार का फ़ैसला उसके प्रतिकूल हो, यह भी सम्भव है; लोग उस पर दोषारोपण करें, उसके सम्बन्ध में सन्देह और शंकायें की जायं, लेकिन

उसे तो अपनी जगह से विचलित नहीं होना है—उसका आधार हिलाया नहीं जा सकता।

यहाँ तक तो रचना के सिद्धान्तों की बात रही है। जहाँ तक मेरा अपना अनुभव और विश्वास है मैंने कम से कम शब्दों में व्यक्त किया है। लेकिन मैं अपने नाटक की भूमिका लिख रहा हूं, और इस सम्बन्ध में अभी कुछ विशेष नहीं कहा गया। 'राक्षस का मन्दिर' और 'सन्यासी' में पुरानी परिपाटी के छोड़ने का प्रयत्न मैंने किया था। पुरानी परिपाटी से मेरा मतलब द्विजेन्द्रलालराय की नाट्य परिपाटी से है—जिसका प्रभाव हमारे नाटकों पर बहुत बुरा पड़ा है। हमारे जो कुछ इने गिने नाटक इधर प्रकाशित हुये हैं सब में दुर्भाग्यवश द्विजेन्द्रलाल राय को आदर्श मान कर लेखकों ने कागज़ रँगा है। द्विजेन्द्रलाल राय ने नाटकों में बङ्गाल का शेक्सपियर बनना चाहा था और बङ्गाली आलोचकों की भयङ्कर भावुकता और दयनीय विचार हीनता के कारण उन्हें कुछ समय के लिये वह पद मिल भी गया। जिस युग में यूरप के नाटककार शेक्सपियर के नाटकों को मनोविज्ञान और यथार्थ के प्रतिकूल कह कर एक नया रास्ता निकाल रहे थे,—बौद्धिक अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक मीमांसा का वह रास्ता जिस पर इब्सन से लेकर इस युग तक के सभी श्रेष्ठ नाटककार चलते रहे हैं और चलते ही रहेंगे, उसी युग में शेक्सपियर के अनुकरण पर हमारे देश में भावुकता की एक गन्दी प्रवृत्ति फैल गई और उस गन्दी प्रवृत्ति के सब से बड़े प्रतिनिधि द्विजेन्द्रलाल राय हुये। कालेज के दिनों में जब मैं शेक्सपियर को पढ़ता था मुझे ऐसा कई बार बोध हुआ कि द्विजेन्द्रलाल राय ने अनुकरण के आधार पर ही भारत के आधुनिक नाट्य साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। लेकिन वह अनुकरण कहाँ तक श्रेयष्कर हुआ यह बात विचारणीय है। यों तो द्विजेन्द्र की नाट्यकला में

साधारण समझवालों के लिये सब कुछ है, प्रेम, हत्या, घृणा, सुख, दुख, त्याग, वीरता और कायरता जिस हद तक द्विजेन्द्र ने दिखलाया है—इस युग का कोई भी नाटककार नहीं दिखला सका। लेकिन यह सब होते हुये भी द्विजेन्द्र की सारी सृष्टि मिथ्या और असम्भव के आधार पर हुई है। मनुष्य चरित्र में या तो उन्हें केवल दैवी देख पड़ा या केवल राक्षसी—या तो केवल प्रकाश देख पड़ा या केवल अन्धकार। विरोधी उपकरणों का द्वन्द या सामञ्जस्य दिखलाना उनकी शक्ति के परे की चीज़ है। उनका सम्पूर्ण साहित्य शब्दों और वाक्यों का साहित्य है, जीवन के साथ कहीं भी मेल नहीं खाता। चरित्रों के निर्माण में द्विजेन्द्र के लिये भले और बुरे दो ही रास्ते हैं—जो चरित्र भला है अन्त तक भला है उसका तेज कभी मन्द नहीं पडता और जो चरित्र बुरा है अन्त तक बुरा है भलाई कभी भूल कर भी उसके पास नहीं फटकती। लेकिन यह मिथ्या है। जीवन और जगत के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं। द्विजेन्द्रलाल राय से बढ़कर अन्तःकरण का अन्धा साहित्यकार मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं आया। द्विजेन्द्र के 'दुर्गादास' में गुलनार दुर्गादास से कहती है—

गुलनार—क्या मुझ से नफ़रत करते हो ?—मेरा कहना तुमको मन्जूर नहीं ? दुर्गादास ! मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार घुटने टेककर भीख की तरह किसी से प्यार नहीं मांगती—वह दुआ की तरह अपना प्यार बाँटती है।—पसन्द कर लो—बेगम गुलनार का प्यार या मौत ?

दुर्गादास—पसंद कर लिया, मैं मौत चाहता हूँ।

गुलनार—मौत ? अच्छा यही सही—मैं अपने हाथ से तुम्हारी जान लूंगी।—गुलनार से एक चीज़ पाओगे मोहब्बत या मौत। अगर मोहब्बत नहीं चाहते तो मरने के लिये तैयार हो जाओ—कामबख्श !

[गुलनार के पुत्र कामबख्श का प्रवेश]

गुलनार—कामबख्श—मारो ! इसे मारो । इसी दम मार डालो—देख क्या रहे हो !—मारो,

कामबख्श—क्यों अम्मीजान ?—बादशाह के हुक्म के—

गुलनार—बादशाह का हुक्म ? मेरे हुक्म पर बादशाह का हुक्म ? इसीदम मारो ।—क्या मेरा कहना न मानोगे ? [चिल्ला कर] मारो—मारो—मारो !

इस कथोपकथन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर अपना समय नष्ट करना मैं नहीं चाहता। विवेकशील पाठक समझते होंगे कि प्रेम के सम्बन्ध में कहना या व्याख्यान देना कितना असम्भव है। उसी प्रेम के नाम पर द्विजेन्द्र ने कितनी गन्दी बातें गुलनार के मुंह से कहला दीं। यह सब कितना असत्य और कितना असम्भव है। गुलनार या तो दुर्गादास को अपना प्रेम दे सकती है या मौत। वाह ! धन्य गुलनार और धन्य द्विजेन्द्रलाल राय। लेकिन मैं तो ऊपर कह आया हूँ कि द्विजेन्द्रलाल का साहित्य शब्दों का साहित्य है—उसमें असलियत का नाम भी नहीं और जहां असलियत नहीं, वहां आदर्श हो भी नहीं सकता। द्विजेन्द्र के प्रत्येक नाटक में—प्रत्येक पृष्ट में—इस तरह की असम्भव और असंगत बातें भरी पड़ी हैं। द्विजेन्द्र की कला को वास्तविक जगत या वास्तविक जीवन से कोइ मतलब नहीं। इस अन्धे और विवेक-हीन नाटककार के कारण हमारे देश का आधुनिक नाट्य साहित्य कितना कलुषित हुआ है, कितना कागज़ और कितनी रोशनाई व्यर्थ फेंकी गई है, कितनों का रास्ता भूल गया है कहा नहीं जा सकता। द्विजेन्द्र के अनुवाद जब से हिन्दी में प्रकाशित हुये स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र के नाटकों को बच्चों का खिलवाड़ कह कर हमारे साहित्यकारों ने दूर फेंक दिया—द्विजेन्द्र का शब्दों और वाक्यों का तूफान नाट्य-कला का

आदर्श बन बैठा और जहां देखिये हिन्दी के नये नाटकों में वही द्विजेन्द्र-वाली बनावटी भाषा और बनावटी भावुकता, सुख, दुख, प्रेम, घृणा, जय और पराजय के झूठे चित्र बनने लगे। कुछ लोगों को इस बात का खेद है कि हिन्दी में द्विजेन्द्र की कोटि का नाटककार अभी पैदा नहीं हुआ—मेरा कहना यह है कि द्विजेन्द्र की कोटि तो शेक्सपियर की कोटि थी—इस बंगाली नाटककार की आत्मा के ऊपर शेक्सपियर का भूत आसन जमाये बैठा था। ज़माना बदल गया। द्विजेन्द्र की मिथ्या भावुकता और रोमेन्स की गन्दगी की ओर से आखें फेर कर हमें स्वतन्त्र और व्यक्तिगत साधना की ओर झुकना चाहिये। अगर हमें निर्माण करना है तो—और यदि केवल पुस्तकें लिखनीं हों तब तो द्विजेन्द्र से अच्छा होगा शेक्सपियर का अनुकरण करना। हिन्दी नाटकों पर से जब तक द्विजेन्द्र का प्रभाव बिलकुल नष्ट नहीं हो जायेगा तब तक हमारे साहित्य में अच्छे नाटकों का निर्माण होना सम्भव नहीं।

'सन्यासी' और 'राक्षस का मन्दिर' लिखते समय मैंने जो प्रयोग प्रारम्भ किया था—वह इस नाटक 'मुक्तिका रहस्य' में आकर पूरा हुआ है। इसमें जैसा कि पढ़ने पर मालूम होगा—कुल तीन दृश्य और तीन अंक हैं। एक अंक में केवल एक दृश्य है। बार बार पर्दा गिराना और उठाना रंगमञ्च को अस्वाभाविक बना देता है। रंगमञ्च का संगठन ऐसा होना चाहिये कि दर्शकों को ऐसा न मालूम हो कि हम लोग किसी अजनबी जगह में या किसी जादूघर में आगये हैं। जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर में रहते हैं उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रंग मञ्च पर भी रहना है—अथवा दूसरे शब्दों में रंगमञ्च और हमारे स्वाभाविक निवास में कोई बहुत विशेष अन्तर नहीं व्यक्त होना चाहिये। कला का काम है जीवन को जगा देना। इस कारण इस युग में रङ्गमञ्च की स्वाभाविकता पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है।

इस नाटक में गीत एक भी नहीं है। सम्भवतः कुछ लोग सोचेंगे कि नाटक बिना गीत के कैसे होगा ? मेरी राय में नाटक में गीत रखना कोई बहुत ज़रूरी नहीं है। कभी कभी तो गीत समस्याओं के प्रदर्शन में बाधक हो उठते हैं। इस युग में नाटक का उद्देश्य मनोरञ्जन की बेहूदी धारणा से आगे बढ़ गया है। जीवन की जटिलता और गूढ़ रहस्यों को खोल कर दिखलाने का काम आज दिन नाटकों द्वारा जितनी सुगमता से हो सकता है, साहित्य के किसी भी अन्य विभाग से उस सुगमता के साथ नहीं हो सकता। रङ्गमञ्च के ऊपर कृष्ण भी गा रहे हैं—शिव भी गा रहे हैं, दुर्गा भी गा रही हैं, गणेश भी गा रहे हैं—यह अच्छा नहीं है। नाटक में गीत का पक्षपाती मैं वहीं तक हूँ—जहां तक इसे जीवन में देख पाता हूँ। जिस किसी चरित्र का स्वाभाविक झुकाव मैं संगीत की ओर देखूंगा—उसके द्वारा दो चार गीत गवा देना मैं मुनासिब समझूंगा। 'सन्यासी' में किरणमयी की अभिरुचि संगीत की ओर है—वह अपनी आन्तरिक विभीषिका को संगीत के पर्दे में ढँक कर रखना चाहती है—इसीलिये उसे कभी कभी मौके बेमौके गाने का जैसे रोग हो जाता है लेकिन 'राक्षस का मन्दिर और 'मुक्ति का रहस्य' में मुझे कोई चरित्र ऐसा नहीं मिला जो गाना चाहता हो—इस कारण इन दोनों नाटकों में एक भी गीत नहीं आसका।

अभिनय के संबन्ध में भी मैं स्वाभाविकता पर ज़ार देना चाहूँगा। तोते की तरह रटे हुये शब्दों को रंगमञ्च पर दुहरा देना ठीक नहीं होता। मुँह से जो शब्द निकलें उनके साथ ही साथ शरीर के अङ्गों का संचालन भी ऐसा होना चाहिए कि जो आपस में सामञ्जस्य स्थापित कर—रङ्गमंच पर मनुष्य की स्वाभाविक ज़िन्दगी दिखलादें अथवा हमारा नित्य का जीवन जैसा है रङ्गमंच का जीवन उसके साथ मेल खा सके। इसी कारण मैंने स्वगत की प्रणाली को अस्वाभाविक समझ

कर छोड़ दिया है। पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तिओं को व्यक्त करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है—उतना स्वगत नहीं। मनुष्य के भीतरी भाव एकांत में भी उसकी भावभङ्गी चेहरे की आकृति या कभी कभी किसी तरह का काम कर देने में व्यक्त होते हैं, चुपचाप कुर्सी पर बैठ कर, चारपाई पर लेटकर या ज़मीन पर खड़ा हो कर व्याख्यान देने में नहीं। मनुष्य ऐसा कभी करता ही नहीं। दो हिस्सा स्वगत और एक हिस्सा वास्तविक कथोपकथन करा देनेमें नाटक का लिखना तो सरल हो उठता है—लेकिन नाटकत्व बिगड़ जाता है, अभिनय की ज़रूरत नहीं रहती। कोई पात्र किसी दूसरे पात्र को प्रेम करता है—प्रेमी अपने कमरे की दीवाल से या अपनी सन्दूक से प्रेमिका का चित्र निकाल कर उसे चुपचाप ध्यान से देखता है, उसे छाती से लगा लेता है या उसको चूम लेता है यह हुई मूक अभिनय की बात। दूसरी ओर वह दर्शकों के सामने खड़ा होकर कहने लगता है—'तुम्हें पता नहीं। मैं तुम्हें हृदय के एक एक बूंद रक्त से प्रेम करता हूँ—इहलोक परलोक से प्रेम करता हूं, जीवन और मरण से प्रेम करता हूँ, मेरे जीवन की अनन्तज्योति ! मेरे हृदय की पवित्रमूर्ति..... इत्यादि'। स्वगत की इस प्रकार की शब्दावली ज़िन्दगी के साथ मेल नहीं खाती। जहां कहीं स्वगत ऐसी चीज की ज़रूरत पड़ी है मैंने मूक अभिनय से काम लिया है इसलिये कि ऐसी चीज़ जीवन में प्रायः मिला करती है—लेकिन स्वगत ऐसी चीज़ तो नितांत अस्वाभाविक है। सचाई कहने की नहीं करने की वस्तु है।

प्रयाग, चैत्र शुक्ल ७
सं १९८९ विक्रम

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

दो शब्द

हिन्दी साहित्य की वृद्धि हो रही है, मौलिक उपन्यास और नाटक भी अब प्रकाशित हो रहे हैं। अच्छे नाटकों में अब कई मौलिक नाटकों की गिनती हो सकती है। परंतु अभी तक स्टेज पर खेलने योग्य नाटक हिन्दी में प्रकाशित नहीं हुए। इधर दो चार मौलिक नाटक प्रकाशित हुए हैं पर भाषा और स्टेज की दृष्टि से वह रङ्गमंच के योग्य मुझे नहीं मालूम होते। पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी०ए० ने इधर तीन नाटक लिखे हैं, यह भाषा और रङ्गमंच की दृष्टि से खेलने के लिए बहुत ही ठीक हैं। नाटकीय कला की दृष्टि से यह सुंदर कहे जा सकते हैं। 'मुक्ति का रहस्य' घटना क्रम और चरित्र चित्रण की दृष्टि से बहुत ही अच्छा हुआ है। यह मुझे बहुत ही रोचक मालूम हुआ। मुझे विश्वास है कि हिंदी में यह बिलकुल नई सृष्टि है। इसकी समस्या सम्भव है सब प्रकार के लोगों के सामने प्रदर्शन के योग्य न मालूम हो परंतु मानव समाज के आंतरिक द्वन्द्वों का विश्लेषण करके अनंत की एक झलक दिखलाई गई है। शुतुरमुर्ग़ की तरह बालू में मुह छिपा कर संसार की समस्याओं से छुटकारा पाना न ठीक है और न सम्भव। लेखक ने प्रयत्न किया है कि हमें झांकी दिखावे अनन्त की, और नाटक ही वह माध्यम है जिसके द्वारा यह काम सम्भव हो सकता है। हिंदी के लिए इस प्रकार के नाटक नए हैं इस लिए अभी शायद जनता को रुचें न, पर नाटक की यह शैली हिंदी नाटक के विकास के लिये आवश्यक सामग्री है इस विश्वास से प्रभावित होकर साहित्य भवन लिमिटेड द्वारा यह नाटक प्रकाशित किये जा रहे हैं।

श्रीनिवास, प्रयाग
१२—४—३२

—ब्रजराज
एम० ए०, बी० एस-सी, एल० एल० बी०

पुरुष पात्र

उमाशंकर शर्मा

मनोहर—उमाशंकर का लड़का अवस्था ८ वर्ष।

त्रिभुवननाथ—उमाशंकर का मित्र—डाक्टर

बेनीमाधव—उमाशंकर का मित्र—वकील

काशीनाथ—उमाशंकर का चचा

देवकीनन्दन—मनोहर का ट्यूटर

मुरारीसिंह—टाउन स्कूल का हेडमास्टर

जगई—उमाशंकर का नौकर

स्त्री-पात्र

आशादेवी

पहला अंक

[सड़क के किनारे दुमंज़िला बँगला। बँगले से सड़क तक थोड़ी सी ज़मीन। उसमें छोटा सा बगीचा। सड़क से बँगले तक पतली सड़क। उस पर उभड़े हुये कंकड़ और घास। बँगले की सड़क के दोनों ओर फूलों के पौदे। फूलों का क्या कहना, पौदों की पत्तियाँ भी सूख रही हैं। बँगले के सामने जो ज़मीन है उसके चारों ओर छोटी सी चहारदीवारी है। चहारदीवारी से लगकर केले के पेड़ लगाये गये हैं। लेकिन उन्हें देखकर मालूम होता है कि आसमान से जो पानी गिरता है उसे छोड़कर सालभर उन्हें कोई दूसरा पानी नहीं मिलता। यहां तक तो बगीचे की हालत– बँगले की ओर देखने से यों तो बँगले की बनावट अच्छी है, खिड़कियां और दरवाज़े अच्छी लकड़ी और अच्छे शीशे के हैं, दीवालें भी जहां तक देख पड़ती हैं रँगी हुई। लेकिन जैसे इधर वर्षों से उसकी सफ़ाई और सफ़ेदी, रँगाई या पालिश नहीं हुई है। सुन्दर चीजें भी अगर बेमरम्मत या लापरवाही के साथ रक्खी जाती हैं तो भयंकर हो उठती हैं। वही हालत इस बँगले की है। इस बँगले को देखते ही इसमें रहने वालों की हालत पर, मनुष्य में जो सबसे बड़ी कमज़ोरी या सब से बड़ा विकार है जिसे साधारण मनुष्य की भाषा में दया या सहानुभूति कहते हैं, जाग उठती है।

शाम हो रही है। डूबतेहुये सूरज की किरनें बँगले के ऊपर वाले कमरों के दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशे पर पड़कर चमक पैदा कर रही हैं। गर्मी का दिन है। इसलिये शाम होने पर भी अभी गर्मी कम नहीं हुई है। चारों ओर सन्नाटा सा मालूम होता है। सामने की सड़क पर कभी कभी मोटर, टाँगा या इक्का की आवाज़ होती है। बँगले के नीचे एक कोने का दरवाज़ा खुलता है और एक व्यक्ति बाहर निकलता है। आज कल जैसी कि लोगों की कहने की आदत हो गई है यह व्यक्ति भारत का भावी सैनिक है। प्राय. तीस वर्ष की अवस्था, न बहुत लम्बा न बहुत छोटा मझोले क़द का, न बहुत मोटा न बहुत पतला साधारण स्वस्थ शरीर, न बहुत गोरा न बहुत काला, बिल्कुल भारतीय रंग गांधी टोपी, खद्दर का कुरता, धोती, पैर में चट्टी। भारत के भावी नेताओं का जो वेश आज कल चारों ओर देख पड़ता है बिल्कुल वही। यह व्यक्ति दरवाज़ा लगाकर बाहर निकलता है, इतने ही में ऊपर आवाज़ होती है—

"सुनिये तो शर्मा जी, उमाशंकर जी"

[इस व्यक्ति का नाम उमाशंकर शर्मा है। शर्माजी ने १९२१ में अच्छे नम्बरों के साथ एम. ए, पास किया था। डिप्टी कलक्टरी में आपका नामिनेशन भी होगया था। लेकिन आप ने असहयोग की लहर में इस्तीफा दे दिया और दो वर्ष के लिये जेल गये।]

[उमाशंकर शर्मा बाहर खड़े होकर देखने लगते हैं कुछ देर के बाद—

शर्माजी—देवीजी क्या है ? मुझे देर हो रही है।

[ऊपर के कमरे का दरवाज़ा खुलता है और एक युवती स्त्री बाहर खुली छतपर आकर खड़ी होती है । देवी का नाम आशा देवी है। सुन्दर, कोमल, आकर्षक जिनकी आंखे बाहरी आवरण के भीतर नहीं पैठ सकतीं—उनके लिये जो कुछ चाहिये सब कुछ। बहुत बारीक खद्दर की साड़ी—किनारों पर छपी हुई । खुले हुए अस्त व्यस्त बाल। देखने से मालूम होता है कि आधुनिक सभ्यता की लहर में देवीजी बहुत दूर तक बह गई हैं। आपकी आँखों में संकोच नहीं है—बोलने में आप की ज़बान कभी रुकती नहीं।]

आशादेवी—क्षमा कीजियेगा ..मैंने समझा शायद आपने मेरी बात नहीं सुनी, और चले गये।

उमाशंकर—कुछ कहना है...आप को ?

आशादेवी—जी नहीं.....योंही ... हां आप लौटेंगे कब ? किस काम से.....

उमाशंकर—ठीक नहीं कह सकता। कल चुनाव है। देखूँ लोगों की मनोवृति क्या है ? आपभी कहीं जाना चाहतीं... .

आशादेवी—सिनेमा..... लेकिन नहीं.....शायद आप देर.....

उमाशंकर—आप के साथ मैं शायद न चल सकूं। पता नहीं कब तक लौटूं तब तक...आप चले जाइयेगा। मनोहर को भी साथ ले लीजियेगा। [उमाशंकर का प्रस्थान। आशा

थोड़ी देर तक वहाँ खड़ी रहती है, जब उमाशंकर सड़क तक पहुँच जाते हैं तब लौटकर कमरे के दरवाज़े पर खड़ी होती है।]

आशादेवी—मनोहर ...मनोहर .....इधर चलो। [कमरे में दरवाज़े के पास एक कुर्सी खींच कर उधर को मुँह कर बैठती है। उसके सामने कमरे के बीच में एक छोटी सी मेज़ और उसके अगल बगल में तीन और कुर्सियां रक्खी हैं। उसके सामने की दीवाल में एक दरवाज़ा है जिसके बाहर नीचे जाने के लिये सीढ़ी बनी है। उसकी दांई ओर की दीवाल में भी एक दरवाज़ा है जिसकी दूसरी ओर उमाशंकर का कमरा है। मनोहर का सामने के दरवाज़े से प्रवेश। मनोहर सीधे आशा के पास न आकर कमरे में इधर उधर देखता है जैसे कुछ पता लगाना चाहता है—फिर तेज़ी से दूसरा दरवाज़ा खोलकर उमाशंकर के कमरे में जाता है मनोहर उमाशंकर का लड़का है। इसकी उम्र इस समय आठ वर्ष की है।]

मनोहर—[उसी कमरे में ताली बजाता है, शोर करने लगता है] कुरता, टोपी कुछ नहीं...कुछ नहीं ..बाबू जी चले गये...बाबू जी चले गये। [उस कमरे से निकल कर फिर दूसरे दरवाज़े से भाग जाना चाहता है।]

आशादेवी—सिनेमा चल रही हूँ—मिठाई भी खिलाऊँगी, तमाशा भी दिखलाऊँगी।

[मनोहर दौड़ कर आशा के पास आता है, कभी उसका हाथ पकड़ कर खींचता है तो कभी उसका कपड़ा पकड़ कर...]

मनोहर—कब चलोगी...चलो...अभी चलो।

आशादेवी—[उसके सिर पर हाथ रख कर] अभी नहीं घंटे भर बाद। जब रात होगी।

मनोहर—हूँ तब तो मैं सो जाऊँगा! चलो...अभी अभी चलो।

आशादेवी—अच्छा यह तो बतलाओ मैं तुम्हारी कौन हूँ।

मनोहर—तुम बताओ।

आशादेवी—मैं तुम्हारी मा हूँ। आज से मुझे मा कहना।

मनोहर—हूँ...वह तो मर गई। मर गई।

आशादेवी—कौन कहता है? अपने बाबू जी से पूछ लेना मैं तुम्हारी मा हूँ या नहीं।

मनोहर—नहीं हो। मेरी मा नहीं हो। वह तो मर गई। बाबू जी तो कहते हैं मर गई। और मुझे भी याद है—उस दिन दोपहर को [कमरे के बाहर हाथ उठाकर] वहाँ वह छत पर कम्बल बिछा कर सुलाई गई थी। मुझे बुलाकर उसने अपनी छाती पर बैठा लिया। उसके बाद तुमने मुझे ज़बरदस्ती उठा लिया—वह मेरी ओर देखने लगी—मैं रोता ही रह गया—तुमने मुझे जाने नहीं दिया—वह भी रोने लगी। [ऊपर हाथ उठाकर] फिर वह आसमान की ओर देखती ही रह गई। लोग उसे उठा ले गये। फिर वह नहीं आई। तुम मेरी मा नहीं हो। वह मुझे दूध पिलाती थी अपने साथ रात को लेकर सोती थी।

आशादेवी—मैं भी तो तुम्हें दूध पिलाती हूँ ..अपने साथ लेकर सोती हूँ।

मनोहर—तुम तो मुझे गाय का दूध पिलाती हो। अपना दूध तो नहीं पिलाती हो।

आशादेवी—[मुस्करा कर] मेरा दूध पीओगे।

मनोहर—नहीं तुम्हारा नहीं ..किसी का नहीं। मुझे दूध पिलाना होता तो वह मरती क्यों ? [उसकी आँखों से आँसू गिरने लगते हैं]

आशादेवी—[अपने अञ्चल से उसकी आंख पोंछ कर] चुप रहो। चलो तुम्हें सिनेमा ले चलूँ।

मनोहर—वह गई कहां ? फिर नहीं आयेगी ?

आशादेवी—नहीं जो जाता है फिर नहीं आता। वह भगवान के दरबार में गई है। वहाँ कोई मरता नहीं। किसी को कोई दुःख नहीं होता।

मनोहर—तब तो वहीं। चलो वहीं चलें। तुम भी चलो। मैं भी चलूं। बाबू जी को भी ले चलो। वहाँ माँ से भेंट होगी। हम सब लोग साथ रहेंगे। मैं वहां भागूंगा नहीं। उसी के साथ रहूँगा।

आशादेवी—तुम वहाँ भी भागोगे। शैतानी करोगे ?

मनोहर—नहीं वहाँ नहीं भागूंगा.. शैतानी नहीं करूंगा। जो कहेगी वही करूंगा चलो...वहीं चलो। कब चलोगी ?

आशादेवी—नहीं अभी नहीं। जब बुड्ढी हो जाऊंगी। बीमार पड़ूँगी . तब.....

मनोहर—तो अभी बीमार पड़ो न। बता दो बीमार कैसे पड़ा जाता है। मैं बीमार पड़ कर चला जाऊँ.....

आशादेवी—अभी नहीं। अभी तुम बड़े होगे। पढ़ोगे। साहब बनोगे। तुम्हारा विवाह होगा। लड़के होंगे। तब तुम बुड्ढे होगे बीमार पड़ोगे।

मनोहर—और तब वहाँ जाऊँगा ?

आशादेवी—हाँ तब

मनोहर—[चिन्तित हो कर] और तुम कब जाओगी ?

आशादेवी—मेरा...भी...विवाह होगा...लड़के होंगे। जब वह सब बड़े हो जायेंगे उनका भी...विवाह होगा—[अपना बाल हाथ में लेकर] मेराबाल सफेद हो जायेगा...मैं बुडढी हो जाऊँगी... तब मैं बीमार पड़ूंगी और मर जाऊँगी...तब मेरे लड़के मुझे उठा कर...वहाँ पहुँचा देंगे जहाँ तुम्हारी—मा गई है।

मनोहर—तुम्हारे बाल सफेद हो जायेंगे तब...कैसे सफेद ? सन की तरह। [सिर हिलाता है]

आशादेवी—हाँ सन की तरह। तुम्हारे ही ऐसे मेरे भी लड़के होंगे।

मनोहर—उनको तुम दूध पिलाओगी ?

आशादेवी—हाँ—[कुछ सोचने लगती है।] मनोहर आज से तुम मुझे मा कहो। मेरे लड़के नहीं होंगे। मैं मर जाऊँगी...तो तुम मुझे वहाँ पहुँचा देना। तुम्हारी मा ने मुझसे कहा था ..कि मैं तुम्हारी मा बनूं। इधर सुनो। [उसके सिर पर हाथ रख कर] तुम्हे मा की जरूरत है और मुझे बच्चे की। तुम मुझे मा कहो. मैं तुम्हें बच्चा कहूँ। कहोगे न ?

मनोहर—बाबू जी से पूछ लूं। नहीं तो मारेंगे कहेंगे तुम्हारी माँ तो मर गई झूठ बोलता है, उस दिन उन्होंने झूठ बोलने के लिये मारा था ...

आशादेवी—और अगर नहीं मारेंगे तो तुम मुझे मा कहोगे ?

मनोहर—कहूँगा ..नहीं...मैं दिन भर सड़क पर लड़कों में खेला करता हूँ। भगवती की मा उसे पकड़ कर ले जाती हैं, रामदीन की मा भी उसे पकड़ कर ले जाती है। तुम तो मुझे पकड़ने नहीं जाती। मेरी मा तो मुझे बगीचे के बाहर नहीं निकलने देती थी। दिन भर मेरे पीछे लगी रहती थी। वह तो मर गई.. मुझे मिठाई न देना दूध न पिलाना...मैं तुम्हें मा नहीं कहूँगा। [आशा निराश होकर उस लड़के की ओर देखती है। जगई का प्रवेश]

आशादेवी—क्या है जी . !

जगई—डाक्टर साहब आपसे मिलने आये हैं।

आशादेवी—[घबड़ाकर] डाक्टर साहब ?

जगई—जी हाँ.. नीचे बरामदे में खड़े हैं।

आशादेवी—कह दो शर्मा जी नहीं हैं ?

जगई—कहा तो . ...आपसे मिलना चाहते हैं।

आशादेवी—क्यों . ...कह दो तबियत अच्छी नहीं है।

मनोहर—तब तो तुम भी मा के पास जाओगी ?

आशादेवी—[सम्हलकर] डाक्टर साहब के पास सूई है... मनोहर को छापा लगा दें।

मनोहर—नहीं-नहीं...[भाग जाता है—सीढ़ियों से होकर नीचे निकल जाता है।]

आशादेवी—कह दो तबियत अच्छी नहीं है, खड़े क्या हो ? [जगई जाना चाहता है। डाक्टर त्रिभुवन नाथ प्रवेश करते हैं, सामने के दरवाज़े से]

डाक्टर—तबियत अच्छी नहीं है—तभी तो डाक्टर की ज़रूरत है। [कमरे के इस ओर आकर एक कुर्सी खींच कर आशा के पास बैठते हैं। जगई का प्रस्थान—डाक्टर बढ़िया सूट पहने, एक हाथ में फेल्ट हैट और दूसरे में छड़ी लिए। जैसे सिविल सर्जन से मिलने निकले हों। डाक्टर सहब की दाढ़ी मूछ सफाई से बनी है। पाउडर क्रीम और वालेटाइल सेन्ट इत्यादि इत्यादि बहुत सी चीज़ों से यह पता चलता है कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन विकृत हृदय और विकृत मस्तिष्क युवकों में हैं, जिन्होंने कि साहब बनने के शौक में संस्कार, चरित्रबल या ऐसी सभी बातें जो मनुष्य को पशुत्व के ऊपर

उठाये रहती हैं, छोड़ दिया है—जो प्रवृत्तियों के ग़ुलाम हैं। सारांश यह कि डाक्टर साहब इस पीढ़ी के उन ग़ुलामों में हैं जिनके भीतर भारतीय पतन की चरम दशा देख पड़ती है।]

आशादेवी—इस तरह किसी के घर में चले आने का क्या अधिकार है साहब ? यह कहां की सभ्यता है ?

डाक्टर—जिस घर में रोगी रहता है उसमें डाक्टर को जाने का पूरा अधिकार है। बीमार की नज़र में डाक्टर कभी सभ्य नहीं होता, क्योंकि वह उसके मन की बात कभी नहीं करता—इसलिए वह असभ्य होता है..पशु होता है...राक्षस होता है।

आशादेवी—[उद्विग्न होकर] लेकिन यहां कोई बीमार नहीं है।

डाक्टर—क्यों ? आपकी तबियत ख़राब है न ? उस नौकर से आप कह रही थीं।

आशादेवी—डाक्टर साहब न तो मेरे पास समय है और न मैं आप से अधिक बातें करना चाहती हूँ।

डाक्टर—हूँ.....

आशादेवी—कहिये। आप किस लिये...

डाक्टर—शायद आप भूल न गई होंगी। मैं बार बार नहीं कहता।

आशादेवी—अगर आप मुझे बहुत तंग करेंगे तो मैं कूयें में कूद कर प्राण दे दूंगी। [सिर नीचे कर ज़मीन की ओर देखने लगती है]

डाक्टर—देवी जी—प्राण ऐसी सस्ती चीज नहीं है [उसकी ओर देख कर मुस्कराता है।]

आशादेवी—मेरा प्राण बहुत सस्ता है अगर इसे देकर मैं और चीजों से छुट्टी पाजाऊं तो...मेरा महाजन खुश रहे...मैं रहूँ या न रहूँ।

डाक्टर—यह तो आप अपने महाजन पर ज़ुल्म कर रही हैं। आप अपने महाजन की ओर एक बार सहानुभूति की नज़र से देखना भी नहीं चाहतीं और कहती हैं प्राण देने के लिये। इधर देखिये [ज़रा सहम कर] आपके प्राण के लिये मैं अपनी दुनियाँ छोड़ने को तैयार हूँ। जिस दिन मर्जी हो देख लीजिये।

आशादेवी—अच्छा हो आप अपनी दुनियां न छोड़ कर सिर्फ़ मुझे छोड़ दें।

डाक्टर—[सिर हिला कर] हूँ—शायद आपको मालूम नहीं। आप मेरी दुनियां से बड़ी हैं। यह बात बहुत कहने की नहीं है—मैंने आप के लिये क्या नहीं किया डाक्टर होकर...जिस मरीज़ की जिन्दगी मुझे सौंपी गई थी उसको ज़हर खैर...मैं क्या करता। मेरा कमज़ोर दिल...आह! [आशा की जांघ पर अपना हाथ रख देता है। आशा जल्दी से कुर्सी छोड़ कर दरवाज़े के पास खड़ी होती है डाक्टर भी उठना चाहता है।]

आशादेवी—बस तुम उठे कि मैंने नौकर बुलाया। नरक के कीड़े....

डाक्टर—देवी जी आपको पता नहीं कि आप क्या कर रही हैं। आपने दवा में मनोहर की मा को ज़हर पिलाया था।

आशादेवी—अच्छा तब...

डाक्टर—मुझसे लेकर .. ..

आशादेवी—ख़ैर यह भी सही...लेकिन इसका मतलब ?

डाक्टर—इसका मतलब यह कि आपको मेरी बात माननी होगी। एक बार नहीं सौ बार ?

आशादेवी—और अगर मैं न मानूं ?

डाक्टर—तो फिर दुनिया जान जायगी कि आपने क्या किया।

आशादेवी—मैं कह दूँगी यह सब झूठ है।

डाक्टर—मेरे पास प्रमाण है ?

आशादेवी - कैसा प्रमाण ?

डाक्टर—आपका पत्र। आपने लिखा है डाक्टर साहब मैंने आठबूंद डाल दिया है...समझा आपने। पूरा पत्र कमसे कम बीस लाइन का है।

आशादेवी—[कुछ सोच कर] कोई बात नहीं। देखा जायगा। किसी भी हालत में मैं अपने चरित्र की पवित्रता छोड़ने पर राज़ी नहीं हूँ। चाहे इसका परिणाम जोहो।

डाक्टर—चरित्र की पवित्रता ? देवी जी यह सब चीजें दुनिया के लिये हैं। जिसे संसार में रहना है...अपनी प्रतिष्ठा बचानी होगी।

आशादेवी—संसार के ऊपर भी कोई चीज़ है..उसे ईश्वर कहते हैं.. डाक्टर साहब उसकी नज़र से बच कर कोई कहाँ जायेगा ?

डाक्टर—वह संसार के ऊपर नहीं...संसार के भीतर है। और फिर वह कहने नहीं आता। उसकी कल्पना ही मनुष्य ने पाप के लिये की है और फिर यहां पाप और पुण्य का क्या सवाल है ? यह तो प्रकृति की बात है ! जो है वही है।

आशादेवी—मैं आपसे बहस करना नहीं चाहती ?

डाक्टर—मैं भी नहीं चाहता। तो फिर.....

आशादेवी—तो फिर...

डाक्टर—तो यही निश्चित है ? लेकिन पछताना होगा।

आशादेवी—जी नहीं...बिल्कुल नहीं। अगर आप वह बात खोलेंगे तो आप भी जायेंगे।

डाक्टर—मैं क्यों जाऊंगा ? मैने उसे ज़हर तो दिया नहीं।

आशादेवी—लेकिन आपने उसके लिये ज़हर तो दिया !

डाक्टर—मैंने उसके लिये नहीं—आपके लिये ज़हर दिया था। कोई भी मेरे यहाँ से ज़हर ला सकता है। उसका वह कैसा उपयोग करेगा...इसका ज़िम्मेदार मैं नहीं।

आशादेवी—लेकिन तो जब आपको पता चला तभी आपने पुलीस को रिपोर्ट क्यों नहीं दी। इसका उत्तर क्या देंगे ?

डाक्टर—मुझे अब पता चला है। जिस दिन रिपोर्ट करूंगा उसी दिन पता चलेगा। और फिर पुलिस में रिपोर्ट करने की क्या जरूरत है मैं शर्मा जी से कहदूंगा। कहना तो होगा ही मुझे। आज तक मैंने कभी हार मानी नहीं है। इसके लिये मैं बनाया नहीं गया था। मुझे कितनी बड़ी आशा दिलाई गई थी। आपको याद नहीं है ? आपने क्या कहा था ?

आशादेवी—डाक्टर साहब मैं स्वयं पश्चात्ताप से मरी जा रही हूँ। उस समय मेरे मस्तिष्क में हत्या की भावना नाच रही थी। उस समय मैं मनुष्य योनि से उतर कर पिशाचयोनि में चली गई थी। मैंने क्या कहा था उसे भूल जाइये।

डाक्टर—एक बार आप और उसी पिशाच योनि में उतर कर .. मैं और कुछ नहीं चाहता, एक बार केवल एक बार, आप मेरी ओर उस नजर से.. जिससे आपने उस दिन देखा था देख लें - मैं समझूंगा मेरी मजदूरी मिल गई

आशादेवी—[कुछ सोच कर] अच्छा—लेकिन एक शर्त है।

डाक्टर—[उत्साह से] कहिये—एक नहीं एक लाख शर्तें—आपको पता नहीं..... इन दिनों मुझ पर क्या बीत रही है। [गला भर आता है] तीन महीने हुये जिस दिन पहले पहल देखा था .....[थोड़ी देर रुककर] कभी रात को नींद नहीं आई—कितनी कल्पना ..मैं आप को बदनाम नहीं करूँगा। यों आपकी जो मर्जी...हां तो शर्त...

आशादेवी—बस वही आठ बूंद आप मुझे भी पिला दें। मैं अब अपने को सम्हाल नहीं सकती। मेरा बोझ बराबर बढ़ता चला जारहा रहा है...उससे छुट्टी लेनी होगी। मैं किस लिये पैदा हुई थी और क्या हो गई? कहां जाना था कहां जा पहुँची। जब कभी सोचने लगती हूँ मालूम होता है—ओफ़ हायरे ज़िन्दगी—हां तो अधिक सोचने की ज़रूरत नहीं है कहिये स्वीकार है?

डाक्टर—और अगर स्वीकार न हो?

आशादेवी—क्यों स्वीकार नहीं होगा? आप मेरी नैतिक हत्या करना चाहते हैं—लेकिन शारीरिक नहीं। देवता के सिर पर लात मार कर मन्दिर में आतिशबाज़ी करना चाहते हैं?

डाक्टर—देवता के सिर पर लात रखकर कभी चोरने घंटा उतारा था। उसे वरदान मिला। आपको याद है या नहीं।

आशादेवी—[मुस्कराकर] तो मैं भी तो वरदान देने को तैयार हूँ। लेकिन मेरी शर्त आप को माननी होगी।

डाक्टर—आपकी शर्त मानने के लिये पत्थर का कलेजा होना चाहिये।

आशादेवी—हूँ...मेरा चरित्र.. स्त्री जीवन का जो सबसे बड़ा भरोसा है...उसे बिगाड़ने में डाक्टर साहब...इसके लिये भी पत्थर का कलेजा होना चाहिये। [डाक्टर की ओर देखने लगती है] मेरे कहने का आप पर असर नहीं होता। मैं आप को धोखा देना

नहीं चाहती...व्यर्थ की आशा और माया जाल में आपको रख छोड़ना ठीक नहीं है। अब आप यहां न आया करें।

डाक्टर—मुझे एक बार और आना होगा...शर्मा जी से कहने के लिये।

आशादेवी—[उद्विग्न होकर] उनसे कहने ? कहियेगा मत डाक्टर साहब ! कितना बड़ा विश्वास घात होगा. मैं उनके सामने कैसे जाऊंगी...वे क्या कहेंगे ?

डाक्टर— मैं उनसे सब कुछ खोल कर कह दूँगा। किस तरह आप उस दिन रात को गईं। किस तरह कैसी आशा दिला कर मुझसे ज़हर लिया और फिर क्या क्या हुआ।

आशादेवी—कब आयेंगे आप उनसे कहने ?

डाक्टर—आज या कल।

आशादेवी—कुछ दिन और ठहर जाइये। मैं अपने को इसके लिये तैयार करलूं।

डाक्टर—[उठते हुये] मैं आपके लिये क्या नहीं कर सकता। लेकिन जो होने को नहीं है...उसके लिये.....

[मनोहर का प्रवेश। सीढ़ी के पास बाहर खड़ा होता है]

मनोहर—अब तो रात हो रही है...चलिये न सिनेमा...

डाक्टर—आप सिनेमा जायेंगी ?

आशादेवी—जी हां विचार तो है। आप भी चलेंगे ?

डाक्टर—चलिये न। लेकिन तब मनोहर को न ले चलिये।

आशादेवी—[सन्देह से] क्यों ?

डाक्टर—इस लिये कि रात को...उसे तकलीफ ....

आशादेवी—लेकिन वह मानेगा.. नहीं . उससे कह दिया।

डाक्टर—कोई बहाना कर दीजिये।

आशादेवी—मनोहर डाक्टर साहब के साथ चलोगे ? उनके पास सुई है।

मनोहर—[रोता हुआ]ऊँ...नहीं...नहीं जाऊँगा। [भाग जाता है]

आशादेवी—ठहरिये मैं कपड़े बदल आऊँ। [आशा का प्रस्थान। डाक्टर उसकी ओर देखते रह जाते हैं। आशा के चले जाने पर कमरे में इधर उधर टहलने लगते हैं। मेज़ पर हाथ रख कर नीचे देखते हुये सिर झुका कर खड़े होते हैं। उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं। मनोहर सीढ़ी के ऊपर आकर कमरे के बाहर खड़ा होता है। थोड़ी देर तक डाक्टर की ओर भय से देखता रहता है।]

मनोहर—सूई...[अपनी बाँह उठा कर टीका लगाने की जगह को बार बार चुटकी से मलता है] नहीं...नहीं डाक्टर साहब पूजा कर रहे हैं। आँख बन्द किये हैं। [डाक्टर उसी तरह खड़े खड़े उसकी ओर देखते हैं] पूजा कर रहे थे डाक्टर साहब ?

डाक्टर—[कुछ सोचते हुये] हां .....

मनोहर—आप मन्त्र जानते हैं ?

डाक्टर—[कुछ सोचते हुये] नहीं.....

मनोहर—[ताली बजा कर इधर उधर उछलते हुये] तब पूजा किसकी कर रह थे ? मालूम होता है आप सुई कहीं भूल गये हैं...उसी को सोच रहे थे।

डाक्टर—सुई . कैसी सुई ?

मनोहर—[अपनी बांह उठा कर] इसमें छेदने के लिये। आपके कोई लड़का नहीं है डाक्टर साहब ? उसकी बांह में तो आप सुई नहीं चुभाते होंगे। [डाक्टर उसकी ओर देख कर मुस्कराते हैं] बतलाइये। बतलाते क्यों नहीं ? आपके लड़का है ?

डाक्टर—नहीं। मै जिस लड़के की बांह में सुई चुभाता हूँ—उसी को लड़का मान लेता हूँ।

मनोहर - तब तो आपके बहुत से लड़के होंगे। उनको कभी मिठाई खिलाते हैं डाक्टर साहब ? वे बीमार पड़ते हैं तो दवा का दाम लेते हैं। या नहीं ?

आशादेवी—[दूसरे कमरे से] शैतानी करोगे मनोहर ? इसको छाप लगाइये डाक्टर साहब !

मनोहर- अच्छी बात [डाक्टर के पास आकर—बांह उठाकर खड़ा होता है] हाँ, लगाइये छाप डाक्टर साहब—अब मैं नहीं मानूंगा। लगाइये···लगाते क्यों नहीं ? देरी न कीजिये···मैं भी चलूँगा सिनेमा देखने।

डाक्टर—छाप लगाने पर तुम्हें बुखार आ जायेगा।

मनोहर—[कुछ सोचकर] और मैं बीमार पड़ कर मर जाऊंगा। [ऊपर हाथ उठा कर] फिर वहाँ चला जाऊँगा। मां के पास। [हाथ जोड़कर] हाथ जोड़ता हूँ। डाक्टर साहब मुझे छाप लगा दीजिये। मैं बीमार पड़ूँ। मा मिलेगी। मेरी मा— [उसकी आंखों से आंसू चल पड़ते है।]

डाक्टर—[मनोहर के सिर पर हाथ रखकर] तुम अपनी मां को याद करते हो मनोहर ?

मनोहर—कोई अपनी मां को भी भूल सकता है···डाक्टर साहब ? [दूसरे कमरे की ओर हाथ उठाकर] यह कहती हैं कि मुझे मां कहा ? मुझे सिनेमा दिखाने को कही थीं। मैं लड़कों से कह आया ·····मैं सिनेमा देखने जा रहा हूँ। अब कहती हैं मत चलो। कल जब लड़के पूछेंगे—मैं क्या कहूँगा। मेरी मां कभी ऐसा करती ? मैं इन्हें कभी मां नहीं कहूँगा।

डाक्टर—[धीरे से] हाँ कभी न कहना।

मनोहर—कभी नहीं कहूँगा डाक्टर साहब। मेरी मां मर गई मर गई ··मर गई ··[उसकी देह काँपने लगती है]।

डाक्टर—और अगर तुम्हारे बाबूजी विवाह करें।

मनोहर—किससे···मां तो मर गई।

डाक्टर—किसीसे···[दूसरे कमरे की ओर हाथ उठाकर] और अगर इन्हींसे करें···तब तो तुम इन्हें माँ कहोगे।

मनोहर—[गर्दन टेढ़ीकर] कभी नहीं। इससे क्या ? मेरी मां तो मर गई।

डाक्टर—लेकिन अगर तुम इन्हें माँ नहीं कहोगे तो खाने को नहीं पाओगे।

मनोहर—[कुछ सोचकर] डाक्टर साहब ! सड़क के उस पार जो अनाथालय है उसमें जो लड़के रहते हैं उनकी माँ मर गई है। मैंने कई लड़कों से पूछा है सब कहते हैं कि उनकी मां मर गई है। उसमें लड़कों को खाना मिलता है—सबेरे दूध भी मिलता है। दिन भर खेलते रहते हैं कोई मारता नहीं मैं भी उसीमें चला जाऊँगा।

डाक्टर—अयँ ! अनाथालय में ?

मनोहर—तो क्या ? सब लड़के तो रहते हैं।

डाक्टर—उसमें ग़रीब लड़के रहते हैं.. जिनको घर पर खाने को नहीं मिलता।

मनोहर—अच्छा तो जब मुझे खाने को नहीं मिलेगा तो मैं भी चला जाऊंगा।

[कपड़े पहन कर आशा का प्रवेश। उसके खुले हुये बाल रेशमी फीते से बँधे हैं। साड़ी का अञ्चल बाईं ओर से घूम कर दाहिनी ओर कन्धे से नीचे पीछे की ओर लटक रहा है। दायें कन्धे पर अञ्चल घुन कर सुनहली क्लिप में समेट दिया गया है। पैर में कामदार जैपुरी

जूता है। डाक्टर साहब एक बार नज़र दौड़ा कर उसे नीचे से ऊपर तक देख लेते हैं —फिर मनोहर की ओर देखने लगते हैं।]

आशादेवी—[मनोहर से] मुझे माँ कहो तो तुम्हें लिवा चलूंगी।

मनोहर—माँ? तुमको ..नहीं...नहीं...नहीं।

आशादेवी—[मुस्करा कर] नहीं कहोगे?

मनोहर—कभी नहीं मेरी माँ तो वहाँ है [ऊपर हाथ उठाता है]

डाक्टर—तुमने वहाँ कभी देखा है अपनी माँ को?

मनोहर—हाँ एक बार। जिस दिन वह वहाँ [कमरे के सामने खुली छत की ओर हाथ उठाकर] मरीथी और लोग उसे उठा ले गये..मैं चाँद की ओर देख रहा था। वहाँ माँ खड़ी थी और मुझे बुला रही थी। वहाँ मैं कैसे जाता डाक्टर साहब? मैं चील होता तो वहां उड़कर चला जाता। तब से मैं बराबर चाँद को ओर देखता हूँ– लेकिन माँ नहीं आती।

डाक्टर—तुमसे नाराज़ है।

मनोहर—इसीलिये तो मैं किसी को माँ नहीं कहता—नहीं तो और नाराज़ हो जायेगी हो जायगी न?

डाक्टर—[अन्यमनस्क होकर] हाँ हो जायेगी।

आशादेवी—देखिये आप इस लड़के का दिमाग़ और बिगाड़ रहे हैं।

मनोहर—[चिढ़कर] चाहे जो करो मैं तुम्हें मां नहीं कहूँगा।

आशादेवी—अच्छा तो मैं जा रही हूँ।

मनोहर—जाओ न।

आशादेवी—चलिये साहब। [आशा और डाक्टर का प्रस्थान। मनोहर सीढ़ी पर जा कर नीचे की ओर झाँक कर देखता है।]

मनोहर—जाओ...जाओ। तुम्हें माँ नहीं कहूँगा। [लौटकर कमरे में आकर खड़ा होता है और ऊपर छत की ओर देखने लगता है] माँ...माँ उतर आओ नीचे। यहाँ कोइ नहीं है ..तुम्हें कोई पकड़ेगा नहीं। कोई नहीं पकड़ेगा—कह तो रहा हूँ। नहीं आयेगी नहीं आयेगी! [बैठकर गद्य पर सिर रख देता है। आशा का प्रवेश। आशा सीढ़ी के ऊपर कमरे के बाहर खड़ी हो जाती है। क्षण भर मनोहर की ओर देखती है। फिर तेज़ी से आगे बढ़कर मनोहर को गोद में उठा लेती है]

मनोहर—छोड़दो...छोड़दो...छोड़दो।

आशादेवी—चलो लाल तुम्हें लेचलूंगी। मुझे माँ न कहना। बस अब मानोगे न... ..

मनोहर—छोड़दो [उसकी गोद में छटपटाने लगता है। आशा उसे धीरे से नीचे उतार देती है।]

आशादेवी—[मनोहर का हाथ पकड़कर] चलो चलें।

मनोहर—[आशा की ओर देखकर] नहीं जाऊँगा अब। जानती हो मां ने मुझसे क्या कहा था?

आशादेवी—नहीं।

मनोहर—अच्छा सुनो। उस दिन रात को कोई नहीं था। [दूसरे कमरे की ओर हाथ उठाकर] माँ उस कमरे में सोई थी। दूसरा कोई नहीं था—मैं चलागया। उसने मुझे अपनी छाती पर बैठाकर कहा 'बाबू मेरे मरजाने पर किसी चीज़ के लिये किसी से हाथ न जोड़ना।' मैं तुमसे हाथ नहीं जोड़ूंगा।

आशादेवी—हाथ जोड़ने को कौन कहता है चलो।

मनोहर—नहीं मानोगी तो मैं रोने लगूंगा। चली जाओ।

[आशा कुछ देर तक उद्विग्न खड़ी रहती है। फिर धीरे धीरे सिर नीचे कर चली जाती है मनोहर बेचैन होकर इधर उधर देखने लगता है। किवाड़ खोल कर दूसरे कमरे में जाता है और अपनी माँ की तस्वीर लेकर निकलता है। तस्वीर को दोनों हाथों से पकड़कर उस पर अपना सिर रख देता है।]

मनोहर—मां—मां बोलो। नहीं बोलोगी? नहीं बोलोगी? अच्छा तब मैं उसे मां कहूँगा और तुम्हें चिढ़ाऊंगा [दूसरे कमरे में कोई आवाज़ होती है, मनोहर चौंक कर खड़ा होता है। धीरे धीरे पैर दबाकर कमरे के दरवाज़े पर जाता है और दूसरे कमरे में झाँक कर देखता है। फिर ओठ दबाते हुये लौटता है, उसकी नाक कभी ऊपर उठती है कभी नीचे झुकती है] कोई नहीं है ···· कोई नहीं है। [जगई का प्रवेश]।

जगई—चलोगे बाबू शहतूत खाने?

मनोहर—नहीं [कुछ सोचने लगता है]

जगई—चलो न खूब पकगई है।

मनोहर—[डाँटकर] चलाजा। उस दिन नहीं पकी थी कि बाबू जी ने मुझे मारा और कहने लगे कि रात को शहतूत खाता है...बीमार पड़ जायेगा!

जगई—वह तो शहर में गये हैं...रात को आयेंगे।

मनोहर—नहीं जाऊंगा—नहीं जाऊंगा...मेरे बहाने शहतूत खायेगा और मारा जाऊँगा मैं। [जगई का प्रस्थान]

[मनोहर सामने के दरवाज़े पर कुर्सी खींच कर बैठता है। तस्वीर को नाक के सामने ऊपर उठाकर देखने लगता है। बातें करते हुये शर्मा जी और बेनीमाधव का प्रवेश। बेनीमाधव भी शर्मा जी की अवस्थाके हैं। रेशमी कुरता, बढ़िया पाड़ की विलायती धोती न राष्ट्रवादी और न अंग्रेज़ी प्रभुत्व के ग़ुलाम, लम्बे, तगड़े, घनी लम्बी मूंछे शायद उनके लिये अपना मतलब चलता रहे...यही संसार का सब से बड़ा सिद्धान्त है।]

शर्मा जी—[मनोहर के पास जाकर] क्या कर रहे हो? तस्वीर तोड़ डालोगे?—मैं तो हैरान हो गया हूँ तुम्हारी शैतानी से। बार बार मना किया कि कोई चीज़ न छुआ करो, तुम नहीं मानते। मुझे फ़ुर्सत नहीं है कि बराबर तुम्हारे पीछे पड़ा रहूँ देखा करूं तुम क्या कर रहे हो, कैसे रहते हो। मास्टर साहब आये थे?

मनोहर—[कातर दृष्टि से शर्माजी की ओर देखता हुआ] अभी नहीं !

शर्मा जी—अभी नहीं ? पहली तारीख को पन्द्रह रुपये के लिये सिर पर चढ़ बैठेंगे । क्या कहूँ जिसके साथ जितनी ही उदारता दिखलाई जाय वह और भी ख्याल नहीं करता । अच्छा जाओ नीचे ! [उसके हाथ से तस्वीर ले लेते हैं] जगई जगई ।

जगई—[नीचे से] आ रहा हूँ साहब

शर्मा जी—अभी लालटेन नहीं जली ?

[लालटेन लेकर जगई का प्रवेश । दूसरे कमरे में लालटेन रख देता है । इस कमरे में भी काफ़ी रोशनी हो जाती है । जगई और मनोहर का प्रस्थान ।]

बेनीमाधव—किसका चित्र है ?

शर्मा जी—मेरी पहली स्त्री का .

बेनीमाधव—तो क्या कोई दूसरी स्त्री भी है ?

शर्मा जी—[असमञ्जस में] जी नहीं.. अभी तो नहीं ।

बेनीमाधव—तब पहली क्यों ?

शर्मा जी—मैं भूल गया कि यहाँ के नामी वकील के सामने खड़ा हूँ नहीं तो ऐसी ग़लती नहीं करता [दूसरे कमरे में प्रवेश कर] आओ यहीं बैठें ।

बेनीमाधव—[कमरे के दरवाज़े पर जाकर] वाह साहब यह तुम्हारा कमरा है या अजायबघर । [कमरे में चारों ओर

देखकर] जिधर देखिये·· किताबें, अख़बार, नोटिसें कैसे रहते हो इसमें ?

शर्माजी—आओ भी।

बेनीमाधव—आख़िरकार बैठा कहाँ जायेगा ? कुर्सियों पर भी तो काग़ज़ों का ढेर लगा है।

[शर्माजी कुर्सियों पर से काग़ज़ उठाकर इधर उधर ज़मीन पर फेंकने लगते हैं, जिसकी आवाज़ बाहर सुनाई पड़ती है।]

बेनीमाधव—हुँ—हुँ—क्या कर रहे हो इतनी धूल उड़ रही है। आओ बाहर वहाँ छत पर बैठें—बड़ी गर्मी है। [रुमाल निकाल कर नाक दबालेते हैं] चेयरमैन होकर भी शायद अपना आफ़िस ऐसे ही रक्खोगे।

शर्माजी—[बाहर निकलते हुये] नहीं वह घर नहीं रहेगा कि जैसा रहे कोई बात नहीं।

बेनीमाधव—जी नहीं, घर की आदत बाहर भी नहीं छूटती।

शर्माजी—अच्छी बात तब तक मैं चेयरमैन हो ही कहाँ रहा हूँ ?

बेनीमाधव—[छत की ओर बढ़ते हुये] चेयरमैन तो हो जाओगे। इसमें तो कोई सन्देह नहीं। तुमने देश के लिये जो त्याग किया है—डिप्टी कलक्टरी के लिये चुन जाने पर, ट्रेनिंग भी ख़तम हो जाने पर तुमने स्तीफ़ा दे दिया। जो सुनता है, हैरान हो जाता है।

शर्माजी—जगई ! जगई !

बेनीमाधव—क्या होगा ?

शर्माजी—कुर्सी बाहर रखदे ।

बेनीमाधव—[एक कुर्सी उठाकर बाहर छतपर निकलते हुये] बुलाओ तुम नेता हो । मुझे तो रोज़ दसबार इधर से उधर कुर्सी करनी पड़ती है । [शर्माजी एक कुर्सी लेकर बाहर निकलते हैं—जगई का प्रवेश] ।

शर्माजी—कुछ नहीं जाओ । मनोहर कहाँ है ?

जगई—नीचे तख़त पर सो रहे हैं ।

शर्माजी—सो रहे हैं ? इस समय ? बड़ा चाण्डाल लड़का है । अभी यह हालत है आगे क्या करेगा ? [जगई का प्रस्थान]

बेनीमाधव—उसकी मां मरगई है । तुमको उस पर उदार होना चाहिये । [कुर्सी पर बैठते हैं]

शर्माजी—[कुर्सी पर बैठते हुये] उदार होना चाहिये...अयं, तुमको पता नहीं मेरी ज़िन्दगी आज कल क्या हो गई है । जिस साल मैं फोर्थइयर में था मैंने अपने हाथ से पांच हज़ार रुपया एक साल में खर्च किया था . जब कि दूसरे लड़कों का काम पांच सौ में हीं चल जाता था । और आज । मेरी स्त्री मर रही थी, मैं इस लायक भी नहीं था कि उसकी ठिकाने से दवाकर सकूं । चचा जी चाहते थे कि मैं रोता हुआ उनके सामने खड़ा होऊं और तब वह दुनियादारी का लेक्चर देकर अपनी लोहे की सन्दूक़ खोलें और मुझे रुपया दें । मुझसे यह नहीं हो सका । इसके लिये मुझे

कितना कष्ट सहना पड़ा . ओफ़, याद कर तबियत दहल उठती है, शरीर का एक एक बूंद रक्त नाचने लगता है। यह बात सच है कि मुझे दुनियादारी नहीं आती। लेकिन शायद इसके लिये मैं पैदा भी नहीं हुआ था ! मुझे इसकी परवाह नहीं है कि दुनियाँ मुझ पर सन्देह करेगी।

बेनीमाधव—लेकिन दुनियाँ तुम पर सन्देह क्यों करेगी ?

शर्मा जी—[बेनीमाधव की ओर ध्यान से देकर] बेनी बाबू . [रुक जाते हैं]

बेनीमाधव—हाँ हाँ, कहो—आज मैं इसीलिये आया हूँ कि तुम्हारी सभी बातें सुन लूँ। कल को तुम चेयरमैन हो जाओगे। फिर पता नहीं...

शर्मा जी—हूँ—तो तुम मेरी सारी बातें सुन लेना चाहते हो आज...जब कि मैं दुर्भाग्य की भँवर में नीचे ऊपर हो रहा हूँ... अब गया तब गया —क्यों [थोड़ी देर रुक कर] कल जब मैं चेयरमैन होकर सौभाग्य के शिखर पर चढ़ जाऊँगा—तब तुम नहीं सुनोगे। [उद्विग्न होकर] ठीक है ..आज ही सुनो...आज तुम्हारी छुरी ज्यादा काम करेगी . कल को तो शायद हाथ कांपे। अच्छा तो सुनो औरों की बात कौन कहे पहले तो तुम्हीं मुझ पर सन्देह कर रहे हो !

[बेनीमाधव एक बार उनकी ओर देखकर चुप रह जाते हैं] हूँ तो मौनं सम्मति लक्षणं—[सिर हिला कर] यहाँ क़ानूनी कूट

नीति की जरूरत नहीं है। मैं तो साफ़ कहता हूँ और साफ़ सुनना चाहता हूँ।

बेनीमाधव—तो क्या मेरा सन्देह निराधार है ?...[मुस्करा कर भौंहें नचा देते हैं।]

शर्मा जी—[कुछ सोचकर] मान लो कि मैं देवी जी को प्रेम करता हूँ तो—? [सिर नीचे कर दाँतों से ओठ दबा लेते हैं]

बेनीमाधव—[रूखे स्वर में] तो कुछ नहीं—जैसी ख़ुशी... लेकिन समाज.....

शर्मा जी—[रूखे स्वर में] समाज का ठेकेदार कौन है मैं या तुम ?

बेनीमाधव—हम दोनों—!

शर्मा जी—कोई नहीं। हम दोनों सुन्दर भोजन पर सुन्दर वस्त्र पर, सुन्दर स्त्री पर—धन, कीर्ति, यश, दुनिया की इन सब चीजों पर...समाज के मुखिया कहते बहुत हैं...करते कुछ नहीं। या सड़क पर जिसे पाप समझते हैं कमरे में उसी की उपासना करते हैं। अपने भीतर एकबार देखो तो मालूम होगा। हम जिस सफ़ाई के साथ अपने पुण्य का विज्ञापन देते हैं, अगर उसी सफ़ाई के साथ अपने पाप का विज्ञापन देते तो मुझे पूरा विश्वास है हम लोगों की नैतिक दशा आज के बनिस्बत कहीं अच्छी होती।

बेनीमाधव—इसका मतलब कि तुम से और कुछ कहना फ़ज़ूल है।

शर्मा जी—फ़ज़ूल नहीं है। मुझसे जो कुछ, जितना कहना चाहो कहो, लेकिन अपने को भी याद रक्खो, अपनी ज़िन्दगी को.. अपनी ओर देख कर मेरी ओर देखो, तब तुम मुझे समझ सकोगे। मेरे पाप को मेरे पुण्य को...अगर इन चीज़ों का कुछ मतलब हो सकता है या इन चीज़ों में कुछ सचाई है। [एकाएक उठकर टहलने लगते हैं, ऊपर देखते हैं, आसमान में चन्द्रमा निकल आया है—छत के किनारे खड़े होकर बाहर सड़क की ओर देखते हैं और फिर लौटकर कुर्सी पर बैठते हुए बेनीमाधव का हाथ अपने हाथ में लेकर] तुम जानते हो असहयोग की लहर में.....स्तीफ़ा देने के बाद...मैं दो वर्ष के लिये जेल गया। मैं मोतीलाल नेहरू तो था नहीं कि मेरे पास जेल में भी सभी चीजें मौजूद थीं, अख़बार भी किताबें भी, या एक शब्द में आनन्द भवन की दीवालों को छोड़कर आनन्द भवन की बाकी सभी चीजें। मैं केवल असहयोगी नहीं था, क्रान्तिकारी था। नौकरी से स्तीफ़ा देकर मैंने नौकरशाही की मशीन का छेद दिखलाया था, उसे ज़बरदस्त धक्का दिया था। इस लिये जेल में मेरी अच्छी ख़बर ली गई। चोर और हत्यारे की तरह मेरी सासत की गई। तुम मेरे लड़कपनके साथी थे। मुझे याद आता है जब हम दोनों दर्जा तीन में पढ़ते थे, हमने एकही आम बारी बारी दांत से काट कर खाया

था · कालेज तक साथ रहे। उन चौबीस महीनों में तुमसे यह भी नहीं हो सका कि अपने लड़कपन के साथी और अपनी जवानी के मित्र को एक बार देख आते। तुम जाते कैसे ? दो दिनों में दो सौ रुपया छोड़ना पड़ता। मामूली आदमी के लिये यह मामूली बात नहीं थी। [थोड़ी देर ठहर कर] मतलब यह कि तुम नहीं गये। घरवालों का क्या पड़ी थी ? माँ बाप थे नहीं। चचा जी को कलक्टर साहब और डिप्टी कलक्टर साहब की दावत देने से ही फुरसत नहीं थी। दुनिया में जो अपने सगे कहे जाते हैं उनके इस व्यवहार से मुझे जितना दुःख हुआ, उतना जेलर की बदमाशी से नहीं।

बेनीमाधव - ठहरो.. .

शर्मा जी—क्यों ?

बेनीमाधव—इस लिये कि जो बीत गया। मैं मानता हूँ हम लोगों से ग़लती हुई।

शर्मा जी—जो बीत गया, बहुत कुछ जिन्दगी में दे गया ले गया... वह मिटाने की चीज नहीं है। जो ग़लती आप लोगों से तब हुई वही ग़लती इधर भी होती रही है और होती रहेगी। इसलिये कि अब मैं आप लोगों के काम का नहीं रहा। आप लोगों को मैं सन्तुष्ट नहीं कर सकूँगा।

बेनीमाधव—वही ग़लती इधर भी ? इसका मतलब ? कहोगे ईमान से इधर तुमने क्या कहा मैंने नहीं किया।

शर्माजी—अजी मैं तुमसे कहता कुछ करने के लिये ? कभी नहीं। जब मेरी ज़िन्दगी के लिये कहने के सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता तो शायद मैं अपने यहाँ के मजिस्ट्रेट मिस्टर कार्टन से कहता, जिनकी नज़र में मैं नौकरशाही का सब से बड़ा शत्रु था और जिन्होंने मुझसे बदला लेने के लिये बड़ी कोशिश कर दो वर्ष सख्त कैद की सज़ा दिलाई थी। शत्रु से हाथ जोड़ते बनता है लेकिन मित्र से नहीं।

बेनीमाधव—मैं तो तुमसे हज़ार बार हाथ जोड़ सकता हूँ।

शर्माजी—तुम जोड़ सकते हो चालाकी के लिये। मुझे यह नहीं आता। सात सौ तीस दिन जेल में बीत गये। जिस दिन दो बजे मुझे बाहर निकलना था, ठीक बारह बजे जेलर ने आकर कहा क्यों साहब अभी तक आपके स्वागत के लिये तो कोई नहीं आया। आपके घर पर कोई नहीं है ? मुझे मालूम हुआ जैसे मैं अनन्त काल से अकेला था, न मेरे नीचे पृथ्वी थी और न ऊपर आकाश ! बेनीबाबू जिन्होंने संसार को माया कहा था, मिथ्या और भ्रम कहा था, उन्हें असली बात मालूम थी।

बेनीमाधव—तुम जानते हो वेदान्त की बातें मेरी समझ में नहीं आती।

शर्माजी—तुम्हें फुर्सत कहां है ? दिन भर कचहरी में मुन्सिफ़ साहब, जज साहब, मुहर्रिर साहब या शायद मुअक्किल साहब भी, रात भर घर में, मां, बाप बाल बच्चे, इधर उधर की गप्प शप्प

एक बार क्षण भर इनसे ऊपर उठकर देखो, तब मालूम होगा वेदान्त क्या है ? दुनियाँ तुम्हारे लायक है और तुम दुनियाँ के लायक हो, इसलिये तुम वेदान्त नहीं समझते। जिस दिन तुम दुनियाँ के लायक नहीं रहोगे या जिस दिन दुनियाँ तुम्हारे लायक नहीं रहेगी, उस दिन तुम वेदान्त समझोगे। या उस दिन तुम वेदान्त छोड़कर और कुछ नहीं समझोगे।

बेनीमाधव—लेकिन शायद वह दिन आयेगा नहीं। मैं तो समझता हूँ मनुष्य को बराबर दुनियाँ के लायक होना चाहिये। सभ्य मनुष्य होकर दुनियाँ के लायक न होना, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती खैर ! तब क्या हुआ ?

शर्माजी—इच्छा हो रही है सुनने की न ? मनुष्य की जितनी रुचि दूसरों के दुःख की बातें सुनने की होती है उतनी उनके सुख की नहीं

बेनीमाधव—अजी तुम क्या हो गये ?

शर्माजी—हो क्या गया ?

बेनीमाधव—तुम्हारे दुःख की बातें सुनने में मेरा मनोरंजन होगा ?

शर्माजी—जरूर होगा। तुम्हारा नहीं, यह मनुष्य के स्वभाव का दोष है। अभी हम स्वभाव से ही क्रूर हैं। जब कोई दया की भिक्षा माँगता है हम उसकी ओर देखकर मुँह बनाते हैं। जब कोई पत्र लिखकर हमारी सहानुभूति अपनी ओर खींचना चाहता

है, हम उसका पत्र पढ़कर अपने मित्रों को सुनाते हैं, और कहते हैं कैसा बेवकूफ है...इसे दुनियाँ का अनुभव नहीं। जिसे हम दुनियाँ का अनुभव कहते हैं, वह हमारी संकीर्णता और हमारे स्वार्थ की अभिव्यक्ति है। हमारी सभ्यता तो बढ़ रही है...लेकिन हमारी मनुष्यता...[चुप होकर एकटक बेनीमाधव की ओर देखने लगते हैं]

बेनीमाधव—घट रही...यही न ?

शर्माजी—मुझे तो ऐसाही मालूम हो रहा है। हमें जिन्दगी का मज़ा नहीं मिलता और न तो हम कभी खुली हवा में सांस ले पाते हैं। प्रेम करने में भी पाप है, दान देने में भी पाप है। दुनियां के नब्बे फीसदी जो काम नहीं करते वह करना...लोग सन्देह करते हैं कि यह प्रेम क्यों करता है, दया क्यों करता है, होगी कोई न कोई छिपी बात।

[मनोहर का प्रवेश] क्यों जी क्या चाहते हो ? मास्टर साहब आये ?

मनोहर—हां आये हैं।

शर्माजी—कब आये ?

मनोहर- देर हुई।

शर्माजी-- तुम्हे पढ़ा चुके ?

मनोहर—हां।

शर्माजी—घर जा रहे हैं ?

मनोहर—अभी तो बैठे हैं।

शर्माजी—तुम किस लिये यहां आये ?

मनोहर—[खड़ा होकर कुछ सोचने लगता है] कहते हैं पूछ आओ, कोई काम तो नहीं है ?

शर्माजी—अभी कह दो बैठें। तुम सिनेमा देखने नहीं गये ?

मनोहर—नहीं ले गईं ?

शर्माजी—क्यों ?

मनोहर—डाक्टर साहब थे।

शर्माजी—उनके साथ गईं ?

मनोहर—हां...

शर्माजी—अच्छा जाओ। [मनोहर का प्रस्थान]

बेनीमाधव—कौन ? डाक्टर त्रिभुवन नाथ ?

शर्माजी—हाँ।

बेनीमाधव—अब कहो ?

शर्माजी—क्या ?

बेनीमाधव—[उनकी ओर देखकर] डाक्टर त्रिभुवन नाथ के साथ, जिसके बारे में रोज शिकायतें सुनी जाती हैं, उसके साथ। तुम बदनाम हो जाओगे ?

शर्माजी—बदनाम तो मैं काफ़ी हो चुका।

बेनीमाधव—इस लिये उसकी अब परवाह नहीं है। यही न ?

शर्माजी—वकील साहब मैं समझ नहीं सकता आप क्या कह रहे हैं ? शिकायतें बराबर सच्ची नहीं होतीं और अगर हों भी तो मैं क्या कर सकता हूँ। आप जानते हैं मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं है, वह किसके साथ रहें और किसके साथ न रहें किससे मिलें और किससे न मिलें, इस बारे में मैं क्या कर सकता हूँ ? जिस तरह मैं स्वतन्त्र हूँ आप स्वतन्त्र हैं वह भी स्वतन्त्र हैं। जिस तरह मैं जिससे चाहूँ मिल सकता हूँ या आप जिससे चाहें मिल सकते हैं उसी तरह वे भी जिससे चाहें मिल सकती हैं। मेरा विश्वास तो ऐसा है···मनुष्य का विकास उसके निजी अनुभवों पर ही होता है यह बात भी मानी हुई है कि सबके विकास का रास्ता एक नहीं है। सब का रास्ता अलग अलग है, सब किसी को उस पर चलना पड़ता है, ठोकर खाना और गिरना यह भी स्वाभाविक है। यही होता रहा है.. हो रहा है और होगा। कोई इसे रोक नहीं सकता...इसलिये मैं इसकी चिन्ता नहीं करता।

बेनीमाधव—ख़ैर जो हो, तुम उनसे छुट्टी क्यों नहीं ले लेते ? क्या ज़रूरत है कि वे तुम्हारे साथ रहें। उनको तुम्हारे साथ रहने का कोई अधिकार भी नहीं है जिसे दुनियाँ या समाज स्वीकार करे।

शर्माजी—[कुछ सोचकर] दुनियाँ या समाज अर्थ ? [चुप हो जाते हैं] मैं हर एक बात को व्यक्ति की नज़र से देखता हूँ।

दुनियाँ या समाज की नज़र से नहीं। व्यक्ति और समाज का द्वन्द जहाँ कहीं हुआ है, जब कभी हुआ है, यह सच है कि व्यक्ति को बराबर दुःख उठाना पड़ा है किन्तु यह भी सच है कि नैतिक विजय बराबर व्यक्ति की हुई है। तुम्हारी दुनियाँ या तुम्हारे समाज ने ईसा, कन्फ्यूसियस, सुकरात या मन्सूर के साथ क्या किया था ? तुम्हें खूब मालूम है। समाज के अगुआ उस समय भी यही सोचते थे कि वे उचित कर रहे हैं मनुष्य जाति की दुःखमय कहानी जिसे हम लोग इतिहास कहते हैं— इन्हीं बातों से भरा पड़ा है। तुम्हारा समाज नहीं जानता कि उन्हें मेरे साथ रहने का अधिकार है या नहीं। लेकिन मेरा हृदय जानता है। मेरी आत्मा जानती है कि उन्हें मेरे साथ रहने का अबाध अधिकार है।

बेनीमाधव—क्यों ?

शर्मा जी—सभी बातें कही नहीं जा सकतीं। मेरी स्थिति में अगर तुम होते तो तुम्हें पता चलता। मेरी स्त्री मर रही थी, मैंने चारों ओर देखा कोई मेरा सहायक नहीं मिला। इस देवी ने उस विपत्ति में मुझे सहारा दिया। मनुष्य जितना से जितना अधिक त्याग कर सकता है उसने किया। सम्भव है लोगों को उसके चरित्र पर सन्देह हो, लेकिन मेरी नज़र शायद उधर न उठे। उसने मेरा उपकार किया यह सत्य है। इसलिये मैं उसका सदैव आभारी रहूँगा। इस अपने देश में कोई भी स्त्री यदि अन्धविश-

वासों और बेहूदी रूढ़ियों को तोड़कर आगे बढ़ेगी, तो लोग उस पर सन्देह करेंगे। हम लोगों का नैतिक जीवन बहुत नीचे पहुँच गया है हम जिधर नज़र डालते हैं, बुराई छोड़कर और कुछ देख नहीं पाते।

बेनीमाधव—ख़ैर जो हो। मैं यह नहीं चाहता कि लोग आप को झूठ मूठ बदनाम करें। मुझे मालूम है जब तक देवी जी आप के साथ रहेंगी आप के चचा आप से बोलेंगे भी नहीं। इसमें हानि आपकी है। आप जो समझें। देवी जी आप को मिलीं कहां?

शर्मा जी—यह जान कर आप क्या करेंगे? जहाँ तक चचा जी की बात, मुझे उसकी इच्छा भी नहीं कि वह मुझसे बोलें। जिस दिन चाहूँगा उन्हें मजबूर होकर मेरा हिस्सा अलग करना पड़ेगा। लेकिन मैं यह चाहूँगा ही नहीं। अपने लिये परिवार को छिन्न भिन्न करना मुझे पसन्द नहीं है।

[मनोहर को गोद में लेकर शर्मा जी के चचा काशीनाथ का प्रवेश। उनके पीछे तीन और आदमी हैं। जगई लालटेन लेकर सब के आगे है जो मेज़ पर लालटेन रखकर दूसरे कमरे से कुर्सियाँ निकाल कर रखता है शर्मा जी और वकील साहब कमरे में आते हैं। शर्मा जी आगे बढ़कर काशीनाथ का पैर छूना चाहते हैं। काशीनाथ रेशमी पारसी कोट जो देहाती सिलाई होने के कारण भद्दा

बना है, फेल्ट टोपी, मखमली किनारे की विलायती धोती और काले रङ्ग का फुलसिलीपर पहने हैं।]

काशीनाथ—नहीं—नहीं—मेरा पैर न छूना अब तुम से मेरा क्या नाता है ? [शर्मा जी चुपचाप सिर नीचे कर खड़े हो जाते हैं वकील साहब ! सुना है यह अपने हिस्से के लिये दावा करनेवाले हैं। इसकी क्या जरूरत है अपना अलग करलें। [उनके साथ के आदमी एक साथ कह उठते हैं] ठीक कह लीं बाबू इहे ठीक होई।

शर्मा जी—जी नहीं यह ग़लत बात है...मैं अपना हिस्सा नहीं चाहता।

काशीनाथ—सब लोग कह रहे हैं ग़लत कैसे है ? वकील साहब उस दिन आप भी तो कह रहे थे ? [वकील साहब असमञ्जस में पड़ जाते हैं जो उनके चेहरे से साफ़ मालूम होता है।]

बेनीमाधव—[कुर्सी बढ़ाते हुए] बैठिये सब ठीक हो जायेगा।

काशीनाथ—जी नहीं मैं यहाँ बैठूंगा ? इस घर में ? मुन्शीजी बही इधर दीजिये तो...

[मुन्शीजी बही मेज पर रखते हैं] खोल दीजिये वह पन्ना वकील साहब देखलें। [मुन्शीजी वह पन्ना खोलते हैं] देखिये तो वकील साहब इनके पढ़ने में कुल कितना खर्च हुआ है ? मैंने साल साल का हिसाब लिख दिया है।

बेनीमाधव—[बही पर नज़र दौड़ाकर] २०५९३॥=) कुल मीज़ान है।

काशीनाथ—देखिये मीज़ान ठीक दिया गया है न ?

बेनीमाधव—[थोड़ी देर चुप रहकर] जी हाँ ठीक है। आपका मीज़ान ग़लत होगा ?

काशीनाथ—ग़लत हो वकील साहब तो गुज़र कैसे हो ? कोई रियासत तो है नहीं। रात दिन मेहनत कर कमाता रहा और इनके पढ़ने का खर्च देता रहा। एक जोड़े जूते में जहाँ मेरा साल कटता था वहाँ इनको आठ जोड़े लगते थे। मैं समझता था कोई अच्छी नौकरी पा जायंगे इज्जत से रहेंगे मेरी भी इज्जत बढ़ेगी। बारबार कहा 'सुराज' की फेर में न पड़ो। गांधी बनिया है उसकी बात में न आओ। अंग्रेज न रहेंगे तो हमारे असामी हमें लूट लेंगे कौन सुने। कितनी मेहनत से डिप्टीकलक्टरी दिलाया। खट से इस्तीफा दे दिया और इज्जतदार के लड़के होकर चक्की पीसने जेलखाने गये। दो वर्ष के बाद निकले भी तो [मनोहर की पीठ पर हाथ रखकर] इसकीमाँ के रहते ही एक फाहशा औरत रख लिया। आज ही कलक्टर साहब कहते थे उस औरत को हटाकर उन्हें घर ले जाइये। आप लोग तो कहते ही थे अब अफसर भी कहने लगे कहिये न मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊं ?

मुन्शीजी—सच बात है वकील साहब ऐसी हालत में कैसे भला.....

काशीनाथ—वकील साहब पूछिये कैसे हिस्सा लगेगा इस २०५९३॥≡) का हिसाब कैसे होगा ?

शर्माजी—[काशीनाथ की ओर देखकर] मेरे पास रुपया तो है नहीं कि इस समय मैं आपको दे सकूं। शायद कभी होगा भी नहीं।

काशीनाथ—होगा क्यों नहीं एक ही साथ के पढ़े वकील साहब सौ रुपया रोज कमाते हैं।

शर्माजी—मेरे पास रुपया कमाने का शऊर नहीं है। इसलिये नहीं होगा हाँ उसी बीस हजार में .....

काशीनाथ—सिर्फ बीस हजार नहीं ५९३॥≡) और

शर्माजी—खैर उसी २०५९३॥≡) में मैं अपना सारा हिस्सा छोड़ दूँगा कल आप मुझसे रजिष्ट्री कराल।

बेनीमाधव—इनके हिस्से की आमदनी कितनी होगी ?

काशीनाथ—क़रीब सात हजार सालाना।

बेनीमाधव—तब तो हिस्से की मालियत उससे बहुत ज्यादा है।

काशीनाथ—हाँ है तो !

शर्माजी—है तो क्या ! मुझे मंजूर है। मैं अपने सारे हिस्से की रजिष्ट्री कल कर दूँगा। आज आप रह जाइये।

बेनीमाधव—लेकिन कल तो आपका चुनाव है ?

शर्माजी—उससे जरूरी इस समय मुझे यही मालूम हो रहा है।

[काशीनाथ मुन्शीजी को अलग हटाकर सीढ़ी के पास खड़े होकर धीरे धीरे कुछ बातें करते हैं...फिर लौटकर]

काशीनाथ—वकील साहब उस औरत को हटाकर पूछिये घर नहीं चलेंगे। अब तो जो होने को हो चुका। घर पर खाने कमाने को बहुत है। इन सब बातों की नौबत क्यों आये ?

बेनीमाधव—कहिये साहब [शर्माजी की ओर देखते हैं]

शर्माजी—जी नहीं मुझे घर नहीं जाना है।

काशीनाथ—अच्छी बात तो मैं आज रह जाऊंगा। कल जो होने को हो·····हो जाय। आगे के लिये फिर झंझट न रहे।

आशादेवी—[नीचे से] जगई! जगई! लालटेन लाना] जगई दूसरे कमरे से लालटेन लेकर नीचे जाता है। शर्माजी चौंक उठते हैं घबड़ा जाते हैं, उनका शरीर थरथरा उठता है वे अपने को सम्हाल नहीं सकते और तेज़ी से खुद भी नीचे जाते हैं]

काशीनाथ—यही वह औरत है क्या ?

बेनीमाधव—जी हाँ!

काशीनाथ—कहाँ गई थी ?

बेनीमाधव—डाक्टर साहब के साथ सिनेमा देखने।

काशीनाथ—कौन डाक्टर!

बेनीमाधव—वही जिनकी दूकान कचहरी के पीछे है।

काशीनाथ—राम···राम···उसके साथ। क्यों साहब मोती-जान के साथ उसी का न नाजायज़ ताल्लुक था ?

वेनीमाधव—जी हाँ।

काशीनाथ—उसके साथ ! कैसी औरत है ? देखते हैं कितना बेशर्म है दौड़ा हुआ चला गया। वकील साहब कल रजिष्ट्री करा लीजिये। नहीं तो यह सब इसी औरत के पीछे फूंक देगा।

मुन्शीजी—बाबू इनको क्या हो गया। पढ़ते थे तब कैसे थे। देखकर तबियत ख़ुश हो जाती थी।

काशीनाथ—अभी यहाँ आप रहेंगे वकील साहब ?

वेनीमाधव—जी नहीं—मैं अब चलूँगा !

काशीनाथ—चलिये चलें। मेरी तो अब यहाँ पल भर रहने की तबियत नहीं चाहती। पचपन वर्ष की उम्र हुई। अब तक इज्जत से निबहता आया। उँगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। आखिरी बार यही दाग़ लगा।

मुन्शीजी—दाग़ क्या है बाबू ? जो जैसा करेगा पायेगा ? आपका क्या विगड़ेगा ? देखते नहीं हैं कहाँ वह गुलाब ऐसा चेहरा और कहां आज कल मालूम हो रहा है जैसे तपेदिक हो गया है।

काशीनाथ—बिना बुलाये क्यों बोलते हैं मुंशीजी—[डाँटकर] जब बोलने का ढङ्ग नहीं आता तो चुप रहा कीजिये। नालायक

भी है तो अपना है। तपेदिक उसके दुश्मन को हो। रजिष्ट्री मैं इस लिये कराऊँगा कि जायदाद बची रहे। आज नहीं कल खुद होश होगा घर न जायेगा तो क्या करेगा ?

बेनीमाधव—आप बहुत ठीक कह रहे हैं। घर न जायेंगे क्या करेंगे।

काशीनाथ—[मनोहर से] क्यों नाती चलोगे घर तुम ? [उसके सिर पर हाथ फेरते हैं]

मनोहर—बाबू जी मारेंगे। वह नहीं जायेंगे तो मैं कैसे जाऊँगा।

काशीनाथ—वह नहीं जायेंगे तुम चलो। घर पर गाय है भैंस है हाथी है, दूध पीना हाथी पर चढ़ कर घूमना !

मनोहर—[जैसे कुछ याद कर] नहीं—नहीं—माँ ने कहा था बाबू जी को रंज मत करना।

काशीनाथ—[उसे छाती से लगाकर] तुम्हें अपनी माँ की बात याद है ?

मनोहर—[साँस खींचकर] हाँ—है·· याद।

काशीनाथ—वकील साहब। अपना अपनाही है। घर में इस समय कोई लड़का नहीं है। सूना मालूम होता है। और यह यहाँ पड़ा है। मनोहर चलो घर तुम।

मनोहर—नहीं—नहीं—छोड़िये [मनोहर नीचे उतर कर कमरे के कोने में खड़ा होता है]

काशीनाथ—अभी तक नहीं लौटा। इतनी बेशर्मी—वकील साहब चलिये।

[काशीनाथ वकील साहब और उनके साथवालों का प्रस्थान। मनोहर बेचैन हो कर इधर उधर कमरे में भटकने लगता है। नीचे कुछ अस्पष्ट आवाज़ सुनाई पड़ती है] नहीं—नहीं—मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। वकील साहब मना कीजिये। कल रजिष्ट्री हो जानी चाहिये। पूछिये मैं रह जाऊँ न।

शर्माजी—रह जाइये – कल हो जावेगा।

मनोहर—[मनोहर दरवाज़े के बाहर सीढ़ी तक जाता है फिर लौट कर] आ रहे हैं, आ रहे हैं, आ रहे हैं। [दौड़कर चुपचाप कुर्सी पर बैठ जाता हैं शर्माजी और आशा का प्रवेश शर्माजी अपने कमरे में जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं। आशा इधर उधर कमरे में टहलकर बाहर खुली छत पर चली जाती है। मनोहर कभी छत की ओर देखता है। तो कभी शर्माजी के कमरे की तरफ़। थोड़ी देर तक बिल्कुल सन्नाटा रहता है। आशा ऊपर हाथ उठाकर अंगड़ाई लेती है। धीरे धीरे कुछ गुनगुनाने लगती है। शर्माजी के कमरे में किसी चीज़ के गिरने और झनक कर फूटने की ज़ोर से आवाज़ होती है। आशा तेज़ी से भीतर जाकर लालटेन उठाकर उसके कमरे में जाती है]

आशादेवी—[कोमल स्वर में] तस्वीर कैसे फूटगई ? तबियत ख़राब है क्या ? तब बोलते क्यों नहीं ? अंधेरे में आकर यहां बैठ-

गये। चलें बाहर। [आशा और शर्माजी बाहर दूसरे कमरे में आते हैं मनोहर के पास की कुर्सी पर शर्माजी बैठते हैं—आशा वहीं खड़ी रहती है।]

शर्मा जी—मनोहर सुनो [मनोहर उनके पास जाता है और वे उसे उठा कर अपनी जांघ पर बैठाकर उसे छाती से लगा लेते हैं। मनोहर सिसक सिसक कर रोना शुरु करता है और ज्यों ज्यों शर्मा जी चुप कराते हैं त्यों त्यों उसकी रुलाई बढ़ती जाती है।] चुप रहो··· न रोओ [उसके सिर पर हाथ फेरते हुये] भूल गये तुम्हारी माँ कह गई थी न कि बाबू जी का कहा मानना। [मनोहर रोना बन्द करता है] क्यों राते हो—बताओ ?

मनोहर—रोने का जी चाहता है। [जगई का प्रवेश]

जगई—भोजन तैयार है।

शर्मा जी—मनोहर को ले चलो खिलाओ तब तक [जगई मनोहर को लेकर चला जाता है। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं। थोड़ी देर सन्नाटा रहता है]

उमाशंकर—[आशा की उंगली पकड़ कर] चिन्ता कैसी ? ····· [आशा का शरीर कांप उठता है वह सिर झुका कर रोशनी की ओर देखने लगती है। रोशनी में उसका सारा मुँह देख पड़ता है। उमाशंकर उसके मुँह की ओर देखने लगते हैं। आशा की आँखों से निकल कर कई बूंद आंसू मेज़ पर टपक पड़ते हैं।] अयं ! रो रही हो [उसका पूरा हाथ पकड़ कर खींचते हुये] इधर देखो। [आशा

अपना मुँह पीछे को फेर लेती है—उमाशंकर एकाएक खड़े हो कर एक हाथसे उसका मुँह रोशनी की ओर फेरते हैं और दूसरे में रूमाल ले कर उसकी आंखे पोंछते हैं। क्षण भर के लिए रूमाल से उसकी आंखे बन्द कर उसके मुँह की ओर देखते हैं। आशा अपना सिर उनके कन्धे पर रख देती है। क्षण भर सन्नाटा।]

आशादेवी—[एकाएक अलग होकर भर्राई हुई आवाज़ में] आप के चचा जी यहाँ जो कहते रहे हैं—आप के बारे में या मेरे बारे में—मैं सब यहाँ सीढ़ी पर खड़ी हो कर सुनती रही हूँ—नीचे भी जो बातें हुई हैं—मैंने सुना है। मेरे लिए आप घर से अलग न हों। मैं यहाँ आई थी आप की सेवा करने और सहायता करने वह समय निकल गया। अब मेरी जरूरत नहीं है। मेरे लिये, सदैव के लिये घर की सम्पत्ति छोड़ देना...

उमाशंकर—[रूखे स्वर में] घर की सम्पत्ति मैं अपने लिये छोड़ रहा हूँ। अपनी मुक्ति के लिये। साम्यवाद की लहर आ रही है—देश की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति होगी—राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की—धनी ग़रीब—यह बात मिटने वाली है अब तो वह युग आ रहा है जिसमें मनुष्य के समान अधिकार और समान कर्तव्य होंगे—स्वामी और सेवक पूंजी पति और मज़दूर ..इन बातों में पड़ कर दुनियाँ बहुत बिगड़ चुकी है। उसकी रीढ़ की हड्डी टूट चुकी है वह सीधी खड़ी नहीं हो सकती। समाज परिवर्तन नहीं क्रान्ति चाहता है। पुरानी इमारत की मरम्मत बहुत

हुई—इतनी हुई कि अब उसमें दूसरी मरम्मत की जगह नहीं है। उसकी नींव हिल रही है—एक धक्का और साफ़। जो समाज की सच्ची भलाई चाहने वाले हैं? उनका काम है कि इस कमज़ोर नींव पर एक भी नई ईंट न रक्खें उस पर और बोझ न लादें। या तो उसे छोड़ कर खुले आसमान के नीचे आजायं. मनुष्य जाति की वह आदिम अवस्था जिसमें न धर्म न अधर्म, न पाप, न पुण्य, न शिक्षा, न मूर्खता प्रकृति के जड़ नियमों में जड़ मनुष्य का जीवन, न घर, न परिवार, न समाज न देश। कहीं कुछ नहीं। सब एक रस और नहीं तो फिर [आवेश में] इस इमारत को गिरा कर उसकी नींव खोदकर फेंक दें और उसकी जगह दूसरी इमारत की नींव डालें। पुरानी इमारत की एक ईंट भी इस नई इमारत में न लगे—नहीं तो वह बैठेगी नहीं।

[कुछ सोचने लगते हैं। आशा ध्यान से उनकी ओर देखने लगती है]

उमाशंकर—[आशा की ओर देखते हुए] इतनी हैरान क्यों देख पड़ती हो ....मैं.....शायद.... हाँ घर वालों से नाता तोड़ कर या पुश्तैनी जायदाद को लात मार कर, मैंने उस युग का आज सच्चे दिल से स्वागत किया है जिसमें मनुष्य केवल मनुष्य होगा—इस पुरानी इमारत की नींव से मैंने एक ईंट निकाल ली है। मैं गिराना चाहता हूँ। बनाने वाले दूसरे होंगे?

आशादेवी – मनुष्य केवल मनुष्य होगा ?

उमाशङ्कर—हाँ—

आशादेवी—लेकिन मैं समझ नहीं सकी !

उमाशंकर—जो बात अब तक हुई नहीं, समझाई नहीं जा सकती। लेकिन यों समझो कि · हमारे और तुम्हारे या किसी के जीवन में हमारी आन्तरिक—प्रवृत्तियां हमारी आत्मा पर छोड़ दी जायँ। हम अपने ज़िम्मेदार रहें, अपने मालिक और अपने नौकर रहें।

आशादेवी—हूँ—तो मैं कब जाऊँ ?

उमाशंकर—कहां जाना है ? तुम्हें अब कहीं जाना नहीं होगा।

आशादेवी—नहीं मैं यहां नहीं रहना चाहती। मेरी अन्तरिक प्रवृत्तियां मेरी आत्मा पर छोड़ दी जायँ।

उमाशंकर—समझ कर कह रही हो ?

आशादेवी—हां...

उमाशंकर—इसका मतलब कि मैं और भी स्वतन्त्र हो रहा हूँ। लेकिन शायद गर्ल्स स्कूल में अब जगह न मिले।

आशादेवी—मैं अब अध्यापिका नहीं रहूँगी। जब एक बार छोड़ दिया तो...

उमाशंकर—तब फिर...

आशादेवी—जो हो—[कमरे के बाहर खुली हुई छत पर जा कर बाहर देखती है।]

उमाशंकर—हूँ .

आशादेवी—यहां—आइये—यह देखिये ..जल्दी...जल्दी ।

उमाशंकर—[वहां जाकर] क्या है ?

आशादेवी—[एक ओर हाथ उठाकर] वह देखिये—कोई—जैसे मनोहर की मां...वह सफ़ेद साड़ी पहने ।

उमाशंकर—कहां—कोई तो नहीं .....

आशादेवी—देखिये, देखिये, आप को देख नहीं पड़ता ? [हाथों में अपना मुँह छिपा लेती है]

परदा गिरता है ।

दूसरा अङ्क

[दोपहर । ग़ज़ब की गर्मी । बाहर धू धू कर लू चल रही है। दृश्य, वही कमरा । वही मेज़ और कुर्सियां । उसी तरह अव्यवस्थित । पिछले दरवाज़े से लगकर दाईं ओर की दीवाल के पास एक चारपाई बिछी है। आशा उस पर बैठकर जाने की तैयारी में ज़रूरी चीज़ें सूट केस में रख रही है । डाक्टर त्रिभुवननाथ का प्रवेश]

डाक्टर—यह सब क्या हो रहा है ?

आशादेवी—[सिर उठा कर उनकी ओर देखने लगती है फिर नीचे देखती हुई] बैठिये ।

डाक्टर—[कुर्सी खीचकर उसके पास बैठते हुये] कहिये ।

आशादेवी—[उनकी ओर देखती हुई रूखे स्वर में] क्या पूछ रहे हैं ?

डाक्टर—यह सब तैयारी ....

आशादेवी—जी हाँ .. ...मैं जारही हूँ ।

डाक्टर—कहाँ ..... ?

आशादेवी—वहां.....जहाँ .. ..मनुष्य न हों ।

डाक्टर—हूँ..... लेकिन .. . क्यों ?

आशादेवी—पता नहीं.... यहाँ रहने की तबियत नहीं चाहती । मेरा पत्र ..

डाक्टर—[मुस्करा कर] पत्र क्या ?

आशादेवी—वही जो रात आपने लौटा देने को कहा था।

डाक्टर—आप मेरा विश्वास नहीं करतीं.....अब क्या ?

आशादेवी—ओफ़—मेरा सब कुछ बिगाड़ कर—मेरे पास जो अमूल्य रत्न था उसे छीन कर, उस पर भी.....उस पर भी डाक्टर साहब [बेचैन हो उठती है, आवाज़ भारी हो उठती है] अच्छा न दीजिये। याद रखिये उस पाप की ज़िम्मेदारी मुझ पर है लेकिन इसकी आप पर।

डाक्टर—किसके सामने ?

आशादेवी—ईश्वर के ?

डाक्टर—देवी जी—मैं नास्तिक हूँ ?

आशादेवी—अच्छा मेरे—मेरे सामने उसकी ज़िम्मेदारी आप पर है। आपने मुझे लोभ में फँसा कर...

डाक्टर—लोभ में फँसाकर ?—आपकी इच्छा नहीं थी ? तब तो मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ।

आशादेवी—[क्रोध से उसकी ओर देखने लगती है]

डाक्टर—रञ्ज होने की ज़रूरत नहीं है—समझने की ज़रूरत है। पुरुष कोई भी हो पुरुष है, स्त्री कोई भी हो स्त्री है।

आशादेवी—इसका मतलब ?

डाक्टर—यही कि जो शर्मा जी वही मैं...भेद सिर्फ़ नाम का है।

आशादेवी—देवता और राक्षस। भेद सिर्फ नाम का है ? बस अब आप यहाँ से चले जाइए।

डाक्टर—देवी जी कल आप मुझे धमकाने के लायक थीं—लेकिन आज नहीं हैं। आप के लिये मैं पहला पुरुष हूँ। आपको मेरा सम्मान करना चाहिये।

आशादेवी—[अपने घुटनों के भीतर सिर दबा कर मुँह छिपा लेती है]

डाक्टर—[मुस्करा कर...कई बार सिर हिलाता है।]

आशादेवी—[डाक्टर की ओर देखती हुई] तो आप पत्र नहीं देंगे ?

डाक्टर—जी नहीं मैं उसे आप की यादगार में रखना चाहता हूँ। हाँ मैं किसी को दूँगा नहीं...इसका मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ।

आशादेवी—लेकिन इसका विश्वास मैं कैसे करूँ ?

डाक्टर—आपकी ख़ुशी। जितना पापी मुझे आप समझी हैं... उतना पापी मैं नहीं हूँ। आप के साथ विश्वासघात अब मैं नहीं करूँगा। वह तो अपने ही साथ विश्वासघात करना होगा।

आशादेवी—अपनेही साथ क्यों ?

डाक्टर—मैं अब आप को अपनी समझता हूँ। मेरी ज़िन्दगी बहुत बिगड़ चुकी थी—लेकिन अब नहीं बिगड़ेगी। मैं डूब रहा

था...आपने मुझे बचा लिया। अब मैं किसी न किसी तरह किनारे जा पहुँचूंगा।

आशादेवी—लेकिन मैं तो डूब गई।

डाक्टर—इसे आप समझें। यह आपका पत्र है। [पत्र उसके सामने फेंक देता है] अब तो आप निश्चिन्त हुईं।

अशादेवी—[पत्र देखकर] जी हाँ—आप का धन्यवाद है।

डाक्टर—[उठते हुए] नमस्कार...क्षमा कीजियेगा।

[डाक्टर का प्रस्थान]

[आशा वहीं चारपाई पर लेट कर अपने मुंह पर तकिया उठाकर रख देती है। उमाशङ्कर का प्रवेश।]

उमाशङ्कर—कैसी तबियत है ?

आशादेवी—[उठकर बैठती हुई] अच्छी है ?

उमाशङ्कर—[सूटकेस की ओर हाथ उठाकर] तैयारी हो रही है क्या ?

आशादेवी—जी हां—तीन बजे की गाड़ी से।

उमाशङ्कर—इस लू में ? रात तबियत उस तरह ख़राब हो गई थी।

आशादेवी—अब तो यहाँ . क्षण भर भी जी नहीं चाहता...

उमाशंकर—मैं यह तो कहता नहीं कि आप रह जायं। लेकिन एक बात है। [चुप होकर] मेरे पास इस समय रूपये नहीं हैं, आप को देने के लिये।

आशादेवी—मुझे देने के लिये रूपये ? हे ईश्वर.....

उमाशंकर—मैं चाहता हूँ.....सब से छुट्टी ले लेना—कोई अपना नहीं... किसी तरह का बन्धन.....अकेले मैं...और यह दुनियां चाहे जैसी रहे। इसके साथ समझौता मैं नहीं कर सकूंगा। मैंने देख लिया.....अच्छी तरह से, यह सम्भव नहीं। मैंने रजिष्ट्री कर दिया.....सारी जायदाद .....पढ़ाई के खर्च में.....जिसके लिए पिता जी को वर्षों बाहर रहना पड़ा था। जिस चीज के पैदा करने में उनकी जिन्दगी गई थी.....मैंने योंही खुशी से छोड़ दिया। करता ही क्या ? [चुप हो जाते हैं]

आशादेवी—[नीचे ज़मीन की ओर देखती हुई] इस पर भी मेरे रूपये की चिन्ता ?

उमाशंकर—हां, मैं और किसी का भी ऋणी रहना चाहता हूँ—लेकिन आप का नहीं।

आशादेवी—मैंने क्या किया ?

उमाशंकर—शायद मैं कह न सकूंगा ! क्या नहीं किया ? मेरे लिये अपनी नौकरी छोड़ कर—नहीं—नहीं—यह कहने की बात नहीं है। मेरे हृदय में कितने घाव हुये थे.....वे सब भर गये .....इसी से.....सिर्फ़ इसी से। आप जा नहीं सकतीं .. जब तक मैं आप का रूपया दे न दूँ।

आशादेवी—मैं तो आज जाऊंगी ?

उमाशंकर—तो आज ही रूपया भी दूँगा।

आशादेवी—मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। मनोहर कहां है ?

उमाशंकर—हो सकता है—मुझे अपने साथ तो न्याय करना है। .... मनोहर को घर लेगये हैं।

आशादेवी—आप के चचा जी ?

उमाशंकर—हां

आशादेवी—जाते समय उसे देख भी न सकी। [हथेली पर सिर रख देती है]

उमाशंकर—अच्छा है घर रहे। मेरे साथ रहने में उसे तकलीफ

आशादेवी लेकिन जब आपने सारी जायदाद की रजिष्ट्री उनके नाम करा दी तो क्या वह वहाँ उनकी दया पर रहेगा ?

उमाशंकर—[कुछ सोचते हुये] जैसे रहे ? उसके भाग्य में जो होगा.....मनुष्य जो लेकर पैदा होता है.....वही.....कोई बदल नहीं ...[आशा उठ कर दूसरे कमरे में जाती है] आदमी की ज़िन्दगी और यह लम्बी दुनियाँ ...समुद्र के बुलबुले उठे और बैठे... [देवका नन्दन और मुरारी सिंह का प्रवेश। मुरारी सिंह एक टाउन स्कूल के हेडमास्टर हैं। अल्पाके का घुटने तक लम्बा कोट, जो कम से कम दस वर्ष पुराना है। मखमली किनारी की विलायती धोती जो कम से कम एक महीने की धुलाई है] आइये। [कुर्सियों की ओर संकेत कर] मास्टर साहब क्या हालचाल है ? मनोहर तो घर गया अब आपको नहीं आना होगा।

देवकीनन्दन—कबतक ?

उमाशङ्कर—ठीक नहीं कह सकता। आपका परिचय !

देवकीनन्दन—आप रामगढ़ टाउन स्कूल के हेडमास्टर बाबू मुरारी सिंह हैं।

उमाशङ्कर—[नमस्कार कर] किस लिये।

मुरारी सिंह—योंही...सरकार के दर्शन के लिये।

उमाशङ्कर—और कोई काम ?

मुरारीसिंह—जी नहीं...सब आप की कृपा !

देवकीनन्दन—आपके चुनाव में आप बड़ी मिहनत कर रहे हैं। इधर पाँच दिनों से स्कूल बन्द कर और मास्टरों के साथ देहात में घूम घूम कर आपने लोगों को समझाया है कि शर्मा जी के चुने जाने से यह फ़ायदा होगा—कच्ची सड़क पक्की हो जायगी। नाले पर पुल बन जायेगा। नये मदरसे खुलेंगे। मास्टरों की तनख़ाह बढ़ेगी।

उमाशङ्कर—बस चुप रहिये। क्यों साहब यह सच है ?

मुरारीसिंह—हुज़ूर हम लोगों ने स्कूल बन्द कर देहातों में लोगों को यह सब समझाया है। जहाँ तक बन पड़ा है रात दिन ..

उमाशङ्कर—तब तो आप को बड़ी तकलीफ़ हुई।

मुरारीसिंह—जी नहीं सरकार। आप चुन लिये जाँय तो हम लोगों का नसीब बन जाय।

उमाशङ्कर—मेरे चुने जाने से आप लोगों का क्या फ़ायदा होगा ?

मुरारीसिंह—हुज़ूर यह मैं कैसे कहूँ—मुझे यक़ीन है।

उमाशङ्कर—आपको यक़ीन है कि मदरसे में मैं आप लोगों के लिये सिंहासन बनवाऊँगा ?

मुरारीसिंह—नहीं सरकार...

उमाशङ्कर—तब क्या ?

मुरारीसिंह—हुज़ूर तो जिरह कर रहे हैं।

उमाशङ्कर—मास्टर साहब थोड़ी देर के लिये आप नीचे जाइये।

[देवकीनन्दन का प्रस्थान] सिंह जी आप को तनख़ाह मिलती है—लड़कों को पढ़ाने के लिये या चुनाव में कन्वेसिंग करने के लिये ?

मुरारीसिंह—[भय से] हुज़ूर जब से चुनाव हो रहा है। मैं यह बराबर करता हूँ और साहब लोग बराबर ख़ुश होते रहे हैं। हुज़ूर अपनी तरक्की के लिये कौन आदमी मिहनत नहीं करता ?

उमाशंकर—तो इस तरह की मिहनत आप बराबर करते रहे हैं ?

मुरारीसिंह—हुज़ूर यह हमलोगों का काम है। आप लोग बने रहेंगे तो हम लोगों का भी गुज़र होगा।

उमाशंकर—लेकिन आप मेरे लिये कोशिश क्यों कर रहे हैं। दो आदमी और खड़े हुये हैं। शायद उनमें से कोई चुन लिया जाय तब ?

मुरारीसिंह—हुजूर जैसी मेरी तकदीर हो, इसके लिये कोई क्या करेगा। इसके लिये मैंने सत्यनारायण की कथा मानी है कि आप हो जायँ। हुजूर से मुझ ग़रीब को बड़ा फ़ायदा होगा।

उमाशंकर— मुझसे ? फ़ायदा होगा ?

मुरारीसिंह—उम्मीद तो हुजूर से ऐसीही है।

उमाशंकर—अगर आप मेरे लिये कोशिश सचमुच कर रहे थे—तो इस समय आपको पोलिंगस्टेशन पर रहना चाहिये था। यहाँ आने की क्या जरूरत थी ?

मुरारीसिंह—[घबड़ाकर] यह तो....ग़लती हो गई.....हुजूर जरूर !

उमाशंकर—हूँ .... आपके मदरसे में कितने मास्टर हैं ?

मुरारीसिंह—हुजूर पाँच।

उमाशंकर—सभी मेरे लिये कोशिश कर रहे हैं ?

मुरारीसिंह—जी नहीं..... एक ऐसे भी महाशय हैं जो कहते हैं कि इन चीजों से हमलोगों को क्या मतलब ? चेयरमैन कोई हो . हमारा काम पढ़ाना है—पढ़ाते चलना चाहिये। यहाँ तक इधर हमलोगों ने स्कूल बंद कर दिया, इसीलिये कि जो कुछ हमलोगों से होसके आपके लिये कोशिश करदें—तो आप रञ्ज

हो गये और अपने दर्जे के लड़कों को छुट्टी नहीं दी...मालूम हुआ कि तीन ही दिन में पढ़ाकर लड़कों को बी ए. पास करा देंगे ? अब देखें हुज़ूर क्या करते हैं ?

उमाशंकर—उनका नाम क्या है ?

मुरारीसिंह—जगदीश तिवारी।

उमाशंकर- हूँ - पुराने मुदर्रिस हैं ?

मुरारीसिंह— नहीं साहब—मैंने पढ़ाकर तो अभी उसे मिडिल पास कराया। इधर दो वर्षों में नार्मल हो आया है।

उमाशंकर—तो अभी नये आदमी हैं—तेज़ होंगे। मालूम होता है कि आपसे उनकी पटती नहीं।

मुरारीसिंह—जो आप लोगों के काम का नहीं होगा...हुज़ूर उससे मेरी पटेगी कैसे ?

उमाशंकर—अच्छा अब आप जाइये—ज़रा उन्हें भेज दीजियेगा—मास्टर साहब को।

मुरारीसिंह—हुज़ूर—मुझे भूल न जायेंगे—शायद...

उमाशङ्कर—जी नहीं - अगर मैं चेयरमैन हो गया तो सबसे पहले आपही को याद करूंगा।

[मुरारी सिंह का नमस्कार कर प्रस्थान]

उमाशङ्कर—[दूसरे कमरे के दरवाजे पर जा कर] क्या सोच रही हो ?

आशादेवी—यही कि मेरी ज़िन्दगी का क्या होगा ?

उमाशंकर—यह कोई बहुत बड़ी समस्या तो नहीं है। जो हो। काल के अनन्त प्रवाह में मनुष्य का जीवन है क्या? तिनके की तरह बहता चला जा रहा है।

आशादेवी—लेकिन इसी में सन्तोष तो नहीं हो सकता!

उमाशंकर—सन्तोष करना चाहिये न?

[देवकीनन्दन का प्रवेश]

देवकीनन्दन—क्या आज्ञा है?

उमाशंकर—[घूम कर] मैं तो अगर चुन लिया जाऊँगा तो मुरारी सिंह को बरखास्त करूँगा!

देवकीनन्दन—बेचारे ने बड़ी मिहनत की है—आप के लिये।

उमाशंकर—इसीलिये तो [डाक्टर साहब का प्रवेश] इस धूप में?

डाक्टर—जी हां—आप को आगाह करने। आप लोगों का विश्वास जल्दी कर जाते हैं। वकील साहब आपको वोट नहीं देंगे। मेरे सामने उन्होंने सेठ जी से पाँच सौ रुपया लिया है।

उमाशंकर—बेनोमाधव जो ने? उस निरक्षर को वोट देंगे—जो ठीक दस्तखत भी नहीं कर सकता उसको?.....

डाक्टर—जी हाँ...उसको।

उमाशंकर—मुझे धोखा देंगे? इसका विश्वास तो मुझे नहीं...

डाक्टर—आपको विश्वास हो या न हो। आपको मेरी बात में सन्देह हो तो कोतवाली के पोलिङ्ग स्टेशन पर चलेजाइये। वहीं गये हैं—जहां तक उनमे हो सकेगा किसी को भी आप के लिये वोट नहीं देने दें गे।

उमाशङ्कर—लेकिन क्यों ?

डाक्टर—पहली बात तो यह है कि मुफ़ में पांच सौ रुपये मिल गये—और दूसरी बात यह है कि सेठ से और भी बहुत तरह का मतलब सधेगा। आप उनके किस काम आयेंगे ?

उमाशङ्कर—ओफ़ ! हमारे देश के पढ़े लिखे लोग भी वोट बेंचते हैं ?

डाक्टर—जी हाँ—इन्हीं लोगों के बल पर स्वराज्य का शोर हो रहा है।

उमाशंकर—ठीक कहते हैं...स्वराज्य अभी बहुत दूर है। खैर चलिये कोतवाली मैं चलूंगा—देखूं.....मुझे धोखा.....अपने मित्र को ?

डाक्टर—आप जबरदस्ती मित्रता का नाता निबाहना चाहते हैं। दुनियां कितनी ठोस है .. ..आप नहीं जानते।

उमाशंकर—[डाक्टर का हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में सामने के दरवाज़े के पास ले जाकर धीरे धीरे कुछ कहते हैं।]

डाक्टर—चलिये अभी—मेरे पास है—ले आइये।

उमाशंकर—[कुछ सोचकर] खैर... ..चलिये ! डाक्टर साहब ! मनुष्य की जिन्दगी क्या से क्या हो गई !

डाक्टर—रोने के लिये जिन्दगी में बहुत कुछ है। इसे जितना ही भूला रहे... इसी लिये तो मैं हँसता रहता हूँ।

उमाशंकर—चलिये अभी आ रहा हूँ। [डाक्टर का प्रस्थान उमाशंकर दरवाज़ा पकड़कर बाहर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा का प्रवेश।]

आशादेवी—[उनके नज़दीक जाकर] डाक्टर से रूपया लेंगे ?

उमाशंकर—[उसी ओर देखते हुये] हां—

आशादेवी—मुझे देने के लिये ?

उमाशंकर—हाँ।

आशादेवी—हूँ —तो मैं सब ओर से गई।

उमाशंकर—क्यों। [उसकी ओर देखने लगते हैं]

आशादेवी—[उनकी ओर देखकर] आप जानते नहीं इस डाक्टर ने आप का कितना नुक़सान किया है।

उमाशंकर—मेरा नुक़सान.....डाक्टर ने ?

आशादेवी—हां जिस दिन आप जानेंगे।

उमाशंकर—सुनूं भी।

आशादेवी—मैं नहीं कहूँगी—शायद कहने के पहले मेरी ज़बान गिर पड़ेगी।

उमाशंकर —[ध्यान से उसकी ओर देखने लगते हैं, आशा सिर नीचे कर लेती है] बात क्या है ? इस तरह काँप क्यों रही हो ? जहाँ तक मैं जानता हूँ डाक्टर ने कोई बुराई नहीं की मेरी।

आशादेवी —[सांस खींचकर] ईश्वर करे यही सच हो—लेकिन कैसे ? अगर मैं यह कह पाती।

उमाशंकर—किसी ने मुंह तो नहीं बन्द किया है।

आशादेवी—मेरे हृदय ने—मेरी आत्मा ने...

उमाशंकर—मैं यह पहेली समझ नहीं सकता—[प्रस्थान]

आशादेवी—[अपनी जेब से एक शीशी निकालती है] आठ बूंद और मेरी मुक्ति। आठ बूंद। [शीशी का कार्क ज़रा सा हिलाकर सूंघती है—नाक मुँह सिकोड़ कर कईबार काँप उठती है। दूसरे कमरे से शीशे की छोटी ग्लास में दो घूंट पानी लाती है। कभी ग्लास के पानी की ओर देखती है तो कभी शीशी की ओर। शीशी का कार्क खोलकर ग्लास में उड़ेलती हुई] आठ बूंद एक...दो...तीन...चार [उसका हाथ कांपने लगता है और सारी शीशी उलट पड़ती है। वह थोड़ी देर तक ग्लास कीओर देखती रहती है—कभी तो हाथ नज़दीक लाकर और कभी दूर फैलाकर। थोड़ी देर तक गहरी चिन्ता में...फिर एकाएक उत्साह से। बस यहीं...अब क्या। [ग्लास को ओठ से लगाकर—मुँह में एक घूंट पानी—लेकिन उसीदम तेज़ी से दरवाज़े की ओर बढ़ना और कुल्ला करदेना। ग्लास मेज़पर रखदेती है।] जगई ! जगई !

जगई—[नीचे से] आया।

आशादेवी—हां वहीं से कहो आया। इधर न आना।

[जगई का प्रवेश] यह मेरा बिस्तर जल्दी बाँध दो [चारपाई की ओर हाथ उठाती है]

जगई—अभी...बड़ा घाम।

आशादेवी—[ज़ोर से] बहस क्यों करते हो ?

जगई—[बिस्तर बटोरता हुआ] घाम है—इसमें लूह...

आशादेवी—डरो मत तुम्हें स्टेशन नहीं जाना होगा।

जगई—कौन ले जायेगा ?

आशादेवी—इक्का, टाँगा जो मिले।

जगई—और लारी...बस्स...जल्दी जाना हो तो...

आशादेवी—लारी में कई आदमी के साथ बैठकर...नहीं... नहीं.. इक्का या टांगा लाना ..पूरा किराया कर।

जगई—[बिस्तर बांध कर] तो जाऊँ न ?

आशादेवी—कहां—[जैसे बड़ी देर के बाद होश में आई हो।]

जगई—टांगा के लिये, इक्का...?

आशादेवी—[कुछ सोचकर] हां जाओ—देर न करो। जल्दी लाओगे तो इनाम दूँगी।

जगई—अभी लाया। [तेज़ी से निकल जाता है। आशा ग्लास उठाकर एक बार और ओठ से लगाती है—लेकिन व्यर्थ पी नहीं पाती। निराश होकर गहरी चिन्ता में ग्लास मेज़पर रखती है नीचे मनोहर की आवाज़ सुन पड़ती है।]

मनोहर- कहां जा रहा है ? बाबू जी हैं—देवी जी.....कोई नहीं है। नहीं आयेगा ? मैं अकेले रहूँगा ? अच्छा न आ।लौटेगा तब पूछूँगा।

[आशा चौंक कर उठती है ग्लास उठाकर पी जाती है। दरवाज़े के बाहर सड़क की ओर देखती है, फिर घूमकर पीछे, सीढ़ी की ओर देखती है।]

मनोहर—[सीढ़ी के नीचे से] कोई नहीं है...मैं अकेले रहूँगा ? अनाथालय में...अनाथालय में...लड़कों से साथ...किसी की मां नहीं है.. वहाँ सब लड़के...मैं भी उसी में। [मनोहर का प्रवेश]

आशादेवी—[दौड़कर मनोहर को गोद में उठाती हुई] तुम आ गये.....आगये ! मेरे जाने के पहले—[उसका सिर अपनी छाती से लगाकर] मेरे बच्चे ! मुझसे भेंट करने के लिये। तुम्हें मालूम हो गया कि मैं जा रही हूँ। वहां [ऊपर हाथ उठाकर] तुम्हारी मां के यहाँ।

मनोहर—जा रही हो ? माँ के यहाँ।

आशादेवी—हाँ..

मनोहर—कब ?

आशादेवी—आज—अभी ?

मनोहर—तुम बीमार तो नहीं हो ?

आशादेवी—[मुस्करा कर] मैं ? तुम क्यों आये—घर न जा रहे थे ? अपने बाबा के साथ।

मनोहर—मैं नहीं जाऊँगा। अपने तो गद्दे वाली गाड़ी में बैठे और मुझे दूसरी गन्दी गाड़ी में.. उसमें चमार चिलम पी रहे थे—उसी में थूकते थे—[पीठ पर हाथ रखकर] यहाँ मेरी पीठ पर पड़ गया... ... मैं गाड़ी से निकल आया—सोटा बजी "भों" "धुक धुक" धूंआ निकला...मैं वहीं खड़ा रहा गाड़ी निकल गई। चले गये। अब मुझे नहीं पायेंगे। बाबू जी तो अपने साथ गद्देवाली गाड़ी में बैठाते हैं। मैं नहीं जाऊंगा—नहीं जाऊंगा—भेजेंगे तो गाड़ी से कूद पड़ूंगा ..मर जाऊंगा।

आशादेवी—मैं जा रही हूँ.. तुम्हारी मां के पास...दो घटे में चली जाऊंगी!

मनोहर—मुझे भी ले चलना।

आशादेवी—तुम्हें ? [उसे छाती से लगा कर] नहीं। लाल! तुम यहाँ दुनियाँ में फूलो फलो। लोग तुम्हारी इज्जत करें। मैं तुम्हारी मां से कह दूंगी कि तुम बड़े हो रहे हो। पढ़ रहे हो। बड़े अच्छे लड़के हो। जब तुम स्कूल जाओगे तो मैं तुम्हारी मां के साथ [ऊपर हाथ उठा कर] वहां बहुत ऊपर खड़ी होकर तुम्हारी राह देखूंगी!

मनोहर—और जब स्कूल से लौटूंगा—तब भी ?

आशादेवी—हां तब भी। [उसे नीचे उतार कर] घूम रहा है। मकान घूम रहा है न, मनोहर—जैसे बिजली घर में चक्का घूमता है। [नीचे ऊपर हाथ घुमा कर वृत्त बनाती हुई] इस तरह इस

तरह...इस तरह। [कुर्सी पर बैठ कर मेज पर सिर टेक देती है। मनोहर आश्चर्य से उसकी ओर देखता है।]

मनोहर— बीमार पड़ गई—माँ के पास जाने के लिये। जाड़ा लगता है—कोई चीज़ ओढ़ा दूँ—[दौड़ कर दूसरे कमरे से कम्बल ला कर उसके ऊपर डाल देता है फिर उसकी पीठ को ज़ोर से दबा कर] अब नहीं जाड़ लगेगा [उसका पैर पकड़ कर ऊपर उठाता है] कुर्सी पर रख लो इसे जड़ा रहा है...काँप रहा है।

[जगई का प्रवेश]

जगई— टाँगा आगया।

आशादेवी—[कम्बल फेंककर] अयं आगया ? चलो जल्दी चलो हाँ-बिस्तर, सूट केस लेलो, एक लोटा भी। [उठ कर खड़ी होती है—उसके मुंह से ज़ोरों का पसीना चल रहा है। रह रह कर आँखें खुलती हैं और बन्द होती हैं। चलना चाहती है, लेकिन पैर सीधे नहीं पड़ते, लड़खड़ाती हुई दो क़दम आगे बढ़ती है। जगई सामान उठाता है]

मनोहर—कहाँ जा रही हो ?

आशादेवी—अपने घर...

मनोहर—कहाँ है घर ?

आशादेवी दुनियां के उस पार जहाँ कोई नहीं...कोई नहीं...ओफ़ आग लगी है। पानी। एक लोटा जल्दी पानी ! [जगई चारपाई पर सूट केस और बिस्तर रख कर नीचे दौड़ कर जाता

है। आशा वहीं ज़मीन पर सिर थाम कर बैठ जाती है] मनोहर! मनोहर!

मनोहर—[उसके पास जाकर] क्या है ? [उसकी पीठ पर हाथ रखता है]

आशादेवी—भाग जाओ...भाग...जाओ ...आग लगी... जल जाओगे...जल...जा ..ओ। [पानी लेकर जगई का प्रवेश]

जगई—हां...पानी...

आशादेवी—[अपने सिर पर हाथ रख कर] यहां गिराओ .. जल्दी करो।

[जगई उसके सिर पर पानी गिराने लगता है।]

टांगावाला—[बाहर से] देर हो रही है सरकार! गाड़ी नहीं मिलेगी।

आशादेवी—[गाड़ी नहीं मिलेगी ?] चलो...चलो...जल्दी करो [उठ कर अपना बाल पीछे की ओर फेंक देती है। आगे बढ़ कर कमरे के बाहर सीढ़ी के पास जाती है।]

मनोहर—[दौड़ कर उसका हाथ पकड़ता है] कहां जाओगी ? इसी तरह भीगे कपड़े। [उसका हाथ पकड़ कर खींचता है।]

आशादेवी—[उसके साथ कमरे में आकर] तुम्हारी मां ..... तुम्हारी मां.....वह देखो .....नहीं देखते। [एकाएक चुप हो जाती है—मनोहर भय से उसकी ओर देखता है। जगई बाहर जाना चाहता है।]

मनोहर—मैं अकेले रहूँगा—? देखता नहीं यह जा रही हैं मां के पास—जा—जा· -मैं अकेले रहूँगा—बाबू जी को बुला ला। जल्दी जल्दी।

आशादेवी—[सम्हल कर] नहीं—नहीं— मुझे कुछ नहीं हुआ है—उन्हे न बुलाना—न बुलाना! देवता के सामने—मेरा पाप। देव! देव! मेरे अनन्त जीवन के उपास्य देव! उन्हें नहीं.....उन्हें नहीं।

मनोहर—[चिल्लाकर] क्या कह रही हो ?

आशादेवी—[धीरे से हाथ हिलाकर] कुछ नहीं, डरो मत, तुम्हारी मां की तरह मैं यहां फिर न आऊंगी।

मनोहर—माँ आती हैं ?

आशादेवी—हाँ, रात को, रोज़ जब आधी रात होती है। तुम सो जाते हो। तुम्हारे बाबू जी भी सो जाते हैं, मुझे नींद नहीं आती... तब। तब तुम्हारी माँ आती है मैं रोज उससे वादा करती हूँ, उसके पास जाने के लिये... लेकिन ..

मनोहर—मेरे लिये आता होगी ? तुम्हारे लिये नहीं।

आशादेवी—[एक बार कमरे में चारों ओर देखती है—जैसे कोई भी चीज़ वह नहीं पहचान पाती। रह रह कर उसके मुँह पर भय और विस्मय की रेखा देख पड़ती है। मनोहर मारे डर के थर थर काँप रहा है।] तुम्हारे लिये ...नहीं .. मेरे लिये मैंने जो किया ..... कहते हैं मर जाने पर कोई नहीं आता। मकान उड़ा जा रहा

है......ऊपर ...ऊपर......आसमान में। [अपनी देह पर तेज़ी से इधर उधर हाथ फेरती हुई] चींटी. ...चींटी... बहुत काट रही हैं बहुत।

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर—[आशा के मुँह की ओर देखकर चौंक जाते हैं] अयं ?

[आगे बढ़ कर आशा की ओर देखते हुए] आंखे काली पड़ रही हैं नसें तन गई हैं—[एकाएक मेज़ पर से एक छोटी शीशी उठाकर देखते हुये] यही न...यही न ज़रूर...मैं डरता था। [ज़ोर से] ज़हर खा लिया ?

आशादेवी—नहीं......अमृत......अमृत......

डाक्टर—[उसकी नाड़ी देखते हुये] कितनी देर हुई ?

आशादेवी—[कोई जवाब नहीं देती—जमीन पर लड़खड़ा कर बैठ जाती है।

डाक्टर—[तेज़ी से दूसरे कमरे में जाते हैं] जगई—टांगा रोको जाने न पाये। नहीं ठहरो। [एक स्लिप लेकर प्रवेश] शर्मा जी को यह देना...जब आयें—उसी समय। मनोहर तुमने कोतवाली देखा है ? [जगई स्लिप लेता है]

मनोहर—जहां बन्दूक लेकर सिपाही खड़े रहते हैं ? जहां फुहारा है ?

डाक्टर—हां—वहीं। चलेजाओ। अपने बाबूजी से कहना कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल ले गये हैं।

मनोहर—डाक्टर साहब देवीजी को...कहां ?

डाक्टर—अस्पताल ले गये हैं—अस्पताल। समझे ?

मनोहर—हां—यह तो मां के पास जारही हैं—वहां न लेजाओ।

डाक्टर—जगई इनका एक हाथ पकड़ो तो [जगई एक हाथ पकड़ता है दूसरा हाथ डाक्टर खुद पकड़कर आशा को उठाते हैं—और धीरे धीरे सीढ़ी की ओर लेचलते हैं। आशा जाना नहीं चाहती।]

डाक्टर—सम्हाल कर जगई—सम्हाले रहिये गिरी क्यों जारही हैं ? जाओ मनोहर तुम जल्दी।

मनोहर—[मनोहर को छोड़कर सब का प्रस्थान—मनोहर शीशी उठाता है—उसे इधर उधर उलट पलट कर देखता है।] जहर खालिया ! मां के पास जाने के लिये। मैं भी खालूंगा। कहती है मकान आसमान में उड़रहा है। आगलगी है। ओह ! ओह !

[जगई का प्रवेश। मनोहर दरवाज़े के बाहर सड़क की ओर देखता है] वह टांगा गया। डाक्टर साहब पकड़े हुये हैं। घोड़ा खूब दौड़ रहा है सरपट.. ...सरपट.....

जगई—जाते हो बाबूजी के यहां...या सरपट...सरपट... करते रहोगे ?

मनोहर—[घूमकर] बाबूजी के यहां ?

जगई – डाक्टर साहब नहीं कहगये ?

मनोहर—[सोचकर] क्या कह गये ? क्या कहगये ? बतादो। बतादो।

जगई—बता क्या दूँ ? न जाओ। चपत खाओगे तो याद पड़ेगा।

मनोहर—बताओ—जगई ..हूँ।

जगई—अब कभी नहीं न मारोगे ?

मनोहर—नहीं कभी... ..नहीं... .बतादो ?

जगई—बाबू जी से कोतवाली में जाकर कह दो कि डाक्टर साहब देवीजी को अस्पताल लेगये .....आप भी जाइये जल्दी।

मनोहर—तुम जाकर कह दो .....मैं भूल जाऊँगा ?

जगई—यहां रहोगे अकेले ?

मनोहर—हां रहूँगा... जाओ !

जगई—तुम डरोगे। यहां भूत आता है।

मनोहर—तुमको नहीं पकड़ेगा ?

जगई—मैं उससे लड़ाई करूंगा...और तुम, तुमको उठाकर चला जायेगा।

मनोहर—अच्छा—क्या कहूँगा ?

जगई—बाबू जी से कहना कि डाक्टर साहब देवी जी को अस्पताल ले गये। उन्होंने जहर खा लिया है !

मनोहर—जहर क्या होता है जी !

जगई—जिसे मरना होता है—खा कर मर जाता है।

मनोहर—देवी जी मर जायेंगी ? अच्छा होगा माँ के पास चली जायेंगी !

जगई—बाबू जी सुनेंगे तो मारेंगे।

मनोहर—क्यों ?

जगई—देवी जी का मरना वह नहीं चाहते। सुनेंगे तो मारेंगे !

मनोहर—हूँ...तब नहीं कहूँगा।

जगई—जाओ बाबू—जल्दी करो। अस्पताल भेजो उन्हें।

[मनोहर का प्रस्थान] ज़हर खा गई। बाबू जी से झगड़ा हो गया इसीलिये घर जा रही थीं। मर जाती तो अच्छा होता ! डाटने लगती हैं। मलकिन कितना मानती थीं। कभी कड़ा नहीं बोलती थीं। कहती थीं आदमी का दिल दुखेगा इनको तो दिन भर बाल झाड़ना और बांधना रहता है। उस पर रोब गाँठती हैं। लोग बाबू जी की शिकायत करते हैं उनके साथ रहने से।

उमाशङ्कर—[नीचे से तेज आवाज़ में] क्या हुआ ?

मनोहर—डाक्टर साहब अस्पताल ले गये !

उमाशङ्कर—किसको ?

मनोहर—देवी जी . ज़हर।

उमाशङ्कर—ज़हर—?

[उमाशंकर और मनोहर का प्रवेश]

उमाशंकर—क्या हुआ रे ?

जगई—[जल्दी से] अस्पताल जाइये अस्पताल। देवी जी ज़हर [उनकी ओर देखने लगता है]

उमाशङ्कर—ज़हर खागई ।

जगई—जी हाँ— डाक्टर साहब अस्पताल ले गये । यह चिट्ठी है । [स्लिप देता है]

उमाशङ्कर—[स्लिप लेते हैं—उनका हाथ कांपने लगता है तेज़ी से दूसरे कमरे में जाते हैं—फिर लौट कर दौड़ते हुए सीढ़ियों से उतर जाते हैं—जगई और मनोहर एक दूसरे की ओर देखने लग जाते हैं ।]

मनोहर—[कुछ सोच कर] माँ को तो अस्पताल नहीं ले गये ।

जगई—उन्होंने ज़हर नहीं खाया था न ? वह तो बीमार थीं ।

मनोहर—बीमार थीं । मैं बीमार नहीं पड़ूंगा जगई ?

जगई—तुम ? राम न करे बीमार पड़ो बाबू ।

मनोहर—मैं बीमार पड़ूंगा । क्यों नहीं—क्यों नहीं बीमार पड़ूँगा जगई ?

जगई—चुप रहो ! कोई आता है ! नीचे आवाज होती है ।

[जगई का प्रस्थान]

[मनोहर इधर उधर कमरे में घूमता है—मुँह बना कर सीटी बजाता है बेनीमाधव और काशीनाथ का बातें करते हुये प्रवेश]

बेनीमाधव—बड़ा बुरा हुआ ।

काशीनाथ—बुरा क्या हुआ वकील साहब—वह मर जायेगी तो वह आदमी हो जायेगा। देखा आपने न मैं रोकता ही रह गया लेकिन रजिष्ट्री कराने पर तुल गया। मैंने भी सोचा कि जब इसकी यही नीयत है तो मैं क्यों रोकूं। कहिये न आप ही कोई भी दूसरा आदमी मेरे इतना समाता कर सकता है ?

बेनीमाधव—बड़ी बदनामी होगी—[दोनों कुर्सी पर बैठते हैं—मनोहर दूसरे कमरे में जाकर छिप रहता है।]

काशीनाथ—अब तक बदनामी नहीं हुई ?

बेनीमाधव—कलक्टर नाराज है, मौका पाने पर छोड़ेगा नहीं . और अब इससे बढ़कर दूसरा मौका क्या होगा ?

काशीनाथ—अगर वह उसे बेक़सूर कह कर सभी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेले ?

बेनीमाधव—दुनियाँ अपने को बचाती है—दूसरे का ख्याल नहीं करती। देखिये वह कह देगी कि उन्होंने ज़हर दिया !

काशीनाथ—इसमें शक नहीं कि वह बदचलन औरत है। लेकिन वह अपना ख्याल कहीं करेगी—उसी को बचायेगी। देखा नहीं आपने उस दिन जब मैं उमाशङ्कर से बातें कर रहा था—उसकी आँखों से चिनगारी निकल रही थी। मुझे तो मालूम हो रहा है वह उसे सचमुच मुहब्बत करती है।

बेनीमाधव—लेकिन यह तो और भी बुरा है।

काशीनाथ—मैं भी इसे भला नहीं कहता—लेकिन बात कुछ ऐसी ही है। इस वक्त तो अगर वह मर जाय तो मैं सत्यनारायण की कथा कहलाऊँगा।

बेनीमाधव—[मुस्कराकर] सचमुच ?

काशीनाथ—जी हाँ उसने मेरा घर बिगाड़ दिया।

बेनीमाधव—उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ—[आश्चर्य से] क्या कहते हैं ?

बेनीमाधव—यही कि उसने आपका घर नहीं बिगाड़ा।

काशीनाथ—तब किसने बिगाड़ा ?

बेनीमाधव—बिगड़ने को था खुद बिगड़ गया।

काशीनाथ—देखिये साहब मैं नसीब नहीं मानता। जो जैसा काम करता है फल पाता है—कलक्टर साहब यही कहते हैं।

बेनीमाधव—[हँस कर] जी हाँ, आप तो वही न करते हैं—जो कलक्टर साहब कहते हैं।

काशीनाथ—क्या बुरा करता हूँ—इसी लिये तो वे मुझे इतना मानते हैं। है कोई दूसरा जमीन्दार इस जिले में जिसकी वह इतनी इज्जत करते हों ? उनकी बात तो दूसरी ही है। मेम साहब भी बराबर हाथ मिलाती हैं और अपने बराबर बैठने के लिये कुर्सी देती हैं। आप से सच कहता हूँ अगर मेरा लिहाज नहीं करते तो कलक्टर साहब उमाशकर को फिर जेल भेज देते। एक दिन मेम साहब यही कह रही थीं।

बेनीमाधव—कभी मेम साहब ने आप को चाय पिलाया है या नहीं—सच कहियेगा ।

काशीनाथ—[उनकी ओर देख कर मुस्कराते हैं ।] आप भी दिल्लगी करते हैं ।

बेनीमाधव—जी नहीं, बिल्कुक नहीं । मेम साहब जिसकी इज्जत करती हैं उसे चाय जरूर पिलाती हैं ।

काशीनाथ—[सहम कर] खैर आप से क्या झूठ बालूं .. मुझे कई बार उन्होंने चाय..... ...[चुप हो जाते हैं]

बेनीमाधव—हाँ...हाँ कहिये.... इसमें हर्ज क्या है ? चाय में क्या दोष है ? रेलगाड़ी में बैठकर पूड़ी खाने से बुरा तो है नहीं । उसमें कौन नहीं बैठा रहता...मुसलमान या भंगी ।

काशीनाथ—[कुछ सोचते हुये वकील साहब का हाथ पकड़ लेते हैं] आर्यसमाजी सच कहते हैं छूआ छूत में कोई दोष नहीं है—सफ़ाई होनी चाहिये । पारसाल मैंने मेम साहब को डाली दी थी—बड़े दिन में एक हज़ार रूपया खर्च हुआ था—आठ सौ रूपये की तो एक अंगूठी थी । रूपया है किस लिये ..? इज्ज़त के लिये तो मैं अपनी देह बेंच दूँगा ।

बेनीमाधव-- जी हां सच है । [कुछ सोचकर] देखिये तकदीर। आज मैं सेठ जी के लिये कोशिश करता ही रह गया, लेकिन मेरे मुअक्किल भी बहक कर इन्हें वोट दे आये । कहते थे सब गांधी बाबा के चेला हैं ।

काशीनाथ—आपने यह नहीं कहा कि एक बदचलन औरत अपने साथ लिये है ? कहना चाहिये था।

बेनीमाधव—मैंने कहा—लेकिन सुनता कौन ? गांधी का जादू ऐसा चल रहा है कि जिसने गांधी टोपी लगाई . बस वह गांधी बना।

काशीनाथ—कलक्टर साहब भी कह रहे थे कि गान्धी बड़ा अच्छा आदमी है।

बेनीमाधव—लेकिन उमाशंकर तो उन्हें देवता समझते हैं . कहते हैं कि वह भगवान के अवतार हैं।

काशीनाथ—भगवान का अवतार बनिया ?

बेनीमाधव—जी हां कहते हैं।

काशीनाथ—जाने दीजिये, कुबंस है। मैं तो उसकी ओर देखना नहीं चाहता। वह तो वह देखिये उसके मनोहरा को गाड़ी से निकल कर भाग आया !

मनोहर—[दूसरे कमरे से निकल कर] भाग आया...ता क्या ? अपने तो गद्देवाली गाड़ी में बैठे और मुझे

काशीनाथ—गद्देवाली गाड़ी में बैठोगे ? खाने को नहीं मिलेगा !

मनोहर—नहीं मिलेगा तो अनाथालय में चला जाऊंगा।

काशीनाथ—अनाथालय में ? उठाकर फेंक दूंगा नीचे मर जाओगे।

मनोहर—फेंक दो···मरजाऊंगा तो मां के यहां चला जाऊंगा !

काशीनाथ—इधर चलो। [डांटकर] चलो इधर।

मनोहर—नहीं.....नहीं आऊंगा!

काशीनाथ—नहीं आओगे?

मनोहर—कहता तो हूँ नहीं।

बेनीमाधव—[मुस्कराकर] नेता का लड़का है। दिलगी नहीं है। डरेगा नहीं।

काशीनाथ—[क्रोध से मनोहर की ओर देखते हुये] घर नहीं चलेगा?

मनोहर—नहीं।

काशीनाथ—कहां रहेगा?

मनोहर—यहीं बाबूजी के साथ।

काशीनाथ—लेकिन वह तो जेल जायेंगे? चक्की पीसने तब—

[मनोहर सन्न होकर उनकी ओर देखने लगता है]

बेनीमाधव—बोलो तब क्या होगा?

मनोहर—कुछ नहीं।

काशीनाथ—तब किस के साथ रहोगे?

मनोहर—अकेले.....

काशीनाथ—तब मेरे यहां चलना पड़ेगा। नहीं तो पेट पचक जायेगा।

मनोहर—तुम्हारे यहां तो नहीं जाऊंगा...चाहे मरजाऊं? तुम से हाथ नहीं जोड़ूंगा—मां ने कहा था किसी से हाथ न जोड़ना!

काशीनाथ—तुम्हारी मांने कहा था ?

मनोहर—हां

काशीनाथ—कब ?

मनोहर—रात को...जिसके दूसरे दिन [छत की ओर हाथ उठा कर] वहाँ मर गई और लोग उठा ले गये।

[दरवाज़े पर सिर रख कर दोनों हाथों में मुँह छिपा लेता है।]

काशीनाथ—वकील साहब वह मेरे घर की लक्ष्मी थी। चार-वर्ष वहाँ रही—लेकिन कभी उसकी बोली नहीं सुन पड़ी। ऐसा नहीं हुआ कि किसी नौकर को कभी उसकी परछाईं भी देख पड़ी हो। अगर वहाँ रहती तो मरती भी नहीं।

बेनीमाधव—लेकिन आपने आने क्यों दिया ?

काशीनाथ—न पूछिये। क्या कहूँ। मैं आने नहीं देता था—उसने मेरे पास चिट्ठी लिखी कि मुझे जाने दीजिये। अपने आराम के लिये मैं उनसे अलग नहीं रहूँगी। उनकी सेवा करने से मेरा परलोक बनेगा। इस तरह की बहुत सी बातें थीं। लक्ष्मी थी लक्ष्मी।

[डाक्टर त्रिभुवननाथ का प्रवेश]

बेनीमाधव—क्या हाल है डाक्टर साहब ?

डाक्टर—किस चीज़ की ?

बेनीमाधव—तो छिपा रहे हैं। हम लोगों को मालूम है कि उन्हों ने ज़हर खा लिया...

डाक्टर—हाँ तब ?

बेनीमाधव—पूछ रहा हूँ कि क्या हाल है ?

डाक्टर—[रूखे स्वर में] ज़हर निकल गया है...बच जायेंगी ।

बेनीमाधव—और अगर मुक़दमा चले तब ? ज़रूर चलेगा ?

डाक्टर—मेरा काम था उनका प्राण बचाना । मुक़दमा चलाना आप का काम है ।

बेनीमाधव—हूँ—चलेगा मुक़दमा ज़रूर डाक्टर साहब ?

डाक्टर—कल चलेगा न ? आज तो नहीं न चलता । आज हम लोगों को दूसरी चिन्ता है—मुक़दमें की नहीं । चलेगा मुक़दमा तो देखा जायेगा...

बेनीमाधव—लेकिन उन्होंने ज़हर क्यों खा लिया ?

डाक्टर—इसका जवाब मैं क्या दूं ?—उनकी तबियत ।

बेनीमाधव—उन्हें ज़हर मिला कहाँ ?

डाक्टर—यह सब जान कर आप क्या करेंगे ?

बेनीमाधव—लेकिन मेरे जान लेने से आपका बिगड़ेगा क्या ?

डाक्टर मेरा क्यों बने बिगड़े साहब ? ज़हर खाया उन्होंने । जानना चाहते हैं...आप . .. मुझ से क्या मतलब ?

बेनीमाधव—सिवा आप के उन्हें ज़हर मिला कहां होगा ?

डाक्टर—जी हाँ—मैंने ही दिया था । और कुछ ?

बेनीमाधव—इसका मतलब कि फिर आप भी जायेंगे ?

डाक्टर—हो सकता है। आप दूसरे की बात के लिये इतने परेशान क्यों हो रहे हैं।

बेनीमाधव—इस बात मे मेरे मित्र से कुछ सम्बन्ध है... इसलिये...

डाक्टर—आज कोतवाली में मित्र के लिये वोट क्यों नहीं दिया ? वकील साहब ! मित्रता दिल से होती है—ज़बान से नहीं। जो बन पड़े करदे . ..... बहुत कहने से क्या फ़ायदा ?

काशीनाथ—जाने दीजिये साहब क्या ज़रूरत—फ़ज़ूल की बकवाद। हम लोगों से कोई मतलब नहीं डाक्टर साहब। उनकी इज्ज़त बनाने के लिये तो आप यहां .....

डाक्टर—आप पर तो बस इज्ज़त का भूत.....इसी लिये जिस समय वह जेल में पड़े थे—आप कलक्टर की दावत कर रहे थे—जिसने उनको सज़ा दी थी।

काशीनाथ—[क्रोध से डाक्टर की ओर देखते हुये] आप होश में हैं या नहीं ?

डाक्टर—आप जो समझें। लेकिन सच तो यह है कि आज जिस घड़ी आपने उनकी जायदाद की रजिष्ट्री अपने नाम से... उसी वक्त से मैं होश में नहीं हूँ। आप उनके सगे चचा हैं और आप का काम यह ?

पर्दा गिरता है।

तीसरा अंक

[रात। चारों ओर सन्नाटा। वही कमरा। मेज़ और कुर्सियां निकाल दी गई हैं—बाहर छत पर। कमरे में बीचो बीच, मसहरी के भीतर चारपाई पर आशा सो रही है। उसके पैताने थोड़ी दूर हटकर स्टूल पर मोमबत्ती जल रही है। बाहर छत पर, कुर्सी पर उमाशङ्कर बैठे हैं, उनके पास इधर उधर कुर्सियों पर कागज पड़े हैं। उनके सामने कुछ दूर पर लालटेन जल रही है—जिसकी तेज़ रोशनी उनके मुंह पर पड़ रही है। लेकिन लालटेन नहीं देख पड़ती। बायें हाथ की केहुनी कुर्सी की बाँह पर टेक कर हथेली पर सिर और दायाँ हाथ सीधा कुर्सी की दूसरी बांह पर पड़ा है। बायें हाथ की उँगलियाँ बालों के भीतर घुस गई हैं।

[तेज़ी से जगई का प्रवेश]

उमाशङ्कर—[उसकी ओर देख कर] धीरे से .....जाग जायेंगी।

जगई—[उनके नज़दीक आकर] वकील साहब...

उमाशंकर—आये हैं ?

जगई—जी .हां ..

उमाशङ्कर—[कुछ सोच कर] इस समय...? क्या ज़रूरत ?

जगई—कहते हैं थोड़ी देर के लिये।

उमाशङ्कर—अच्छा भेजो...कह देना पैर दबाकर आयेंगे !

[जगई का प्रस्थान]

उमाशङ्कर—[कुर्सी पर का काग़ज उठा कर धीरे से ज़मीन पर रखते हैं और उठ कर कुर्सी ठीक करते हैं ।]

[बेनीमाधव का प्रवेश]

बेनीमाधव—[कुर्सी पर बैठते हुए] बधाई ।

उमाशङ्कर—किस बात की सरकार ?

बेनीमाधव— दावत दो दावत—चेयरमैन चुन लिये गये अब क्या ?

उमाशङ्कर—आपकी कृपा.....

बेनीमाधव—मैंने तुम्हारे लिये इतनी कोशिश की लेकिन तुम्हे सुबहा है कि ...

उमाशङ्कर—[सिर हिला कर] नहीं...नहीं...कौन कहता है... अगर आप लोग मेरे लिये कोशिश नहीं करेंगे...तो कौन ?

बेनीमाधव—मैंने तो बड़ी कोशिश की यों अगर.....

उमाशङ्कर—[हाथ उठा कर] धीरे से...[आशा की ओर इशारा करते हैं]

बेनीमाधव—मैं कहता था···तुम फ़ज़ूल के लिये परेशान होगे उनके साथ—यों तो बदनामी थी ही...अब और...

उमाशङ्कर—उस विषय की बात न करें । बहुत कहा सुना गया उस बारे में—उसे फिर उठाना...नहीं.. नहीं...बदनामी होती है तो हो ।

बेनीमाधव—जिनको तुम्हारी भलाई का ख्याल होगा... जरूर कहेंगे। मैं तो कहता ही रहूँगा क्योंकि...मुझे...तुम्हारी भलाई...

उमाशंकर—लेकिन अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। कृपा कर इस विषय में अब आप लोग चुप रहें।

बेनीमाधव—[कुछ सोच कर] खैर...नहीं कहूँगा। लेकिन इन्होंने जहर क्या खालिया ?

उमाशंकर—फिर वही बात। उस विषय में कुछ नहीं।

बेनीमाधव—लेकिन समाज में इस तरह···

उमाशंकर—मैं कई बार कह चुका हूँ—समाज की चिन्ता आप न करें। वह ऐसा ही...सदैव से है। वही मनुष्य...वही उसका दिल और दिमाग...बुराई···भलाई सब ऐसी ही। और फिर मैं...मैं अपने साथ प्रयोग कर रहा हूँ...समाज का छोड़ देना मुझे क़बूल है...लेकिन उसका नहीं। भेंड़ की तरह आंख मूंद कर बराबर सीधे चलता जाना—मुझे यह पसन्द नहीं है। मैं तो इन दिनों अपनी ज़िंदगी की प्रयोगशाला में बैठा हूँ...बाहर क्या हो रहा है...सुनना या देखना नहीं चाहता।

बेनीमाधव—लेकिन लेबोरेटरी से भी बाहर निकला जाता है...

उमाशंकर—ठीक है—लेकिन वह लेबोरेटरी अपने खून मांस की, या अपने शरीर की नहीं होती...इस लेबोरेटरी से निकलना... सहज नहीं है।

बेनीमाधव—हूँ ..लेकिन अगर इसमें हानि हो...

उमाशंकर—हानि तो हो गी ही .....लेकिन बिना उसके प्रयोग भी तो पूरा नहीं होगा। बोतल की शराब न जला कर मैं अपने हृदय की शराब जला रहा हूँ—वह प्रयोग जिस दिन पूरा होगा—वकील साहब ? [उत्साह से] उसी दिन मैं सच्चा मनुष्य हूँगा।

बेनीमाधव—अच्छी बात है बनो सत्य मनुष्य।

उमाशंकर—आप मेरी चिन्ता न करें। मैं अपना रास्ता जानता हूँ वकालत खाने के बाहर कोई ठीक रास्ता आप शायद नहीं जानते। मैं अपना रास्ता खुद निकाल रहा हूँ—सम्भव है ठोकर लगे—कहीं ऊबड़ खाबड़ में गिर भी पड़ूं—लेकिन अगर रास्ता मालूम हो जायेगा —तो...सारा परिश्रम...

बेनीमाधव—अच्छा जाने दो ..[हाथ उठा कर] यह बँगले के सामने की सड़क ज़रा जल्दी मरम्मत करा देना...।

उमाशंकर—क्यों...

बेनीमाधव—अब भी...चेयर मैन हो कर भी नहीं...। हम लोगों को, यहां आने में कितनी तकलीफ़ होती है।

उमाशंकर—[उनकी ओर देखकर] चेयरमैन इसी लिये हुआ जाता है कि सब से पहले अपने बँगले के सामने की सड़क मरम्मत करादें। कैसे आप लोग यह सब सोचते हैं ?

बेनीमाधव—हम लोग दुनियां के मामूली आदमी हैं समझते हैं पहले नज़दीक से काम शुरू करना चाहिये।

उमाशंकर—मैं तो पहले इस बँगले के पीछे जो गली है उसकी मरम्मत कराऊँगा।

बेनीमाधव—यह.. जिसके दोनों ओर चमार और बंसफोर बसे हैं।

उमाशंकर—हां... ...बरसात में बेचारों को बड़ी तकलीफ़ होती है। घुटने तक कीचड़ हो जाता है। शायद जब से ये सब यहाँ बसे होंगे कभी डिस्ट्रक्टबोर्ड ने इस पर एक खाँची मिट्टी भी नहीं डाली होगी। बोर्ड के शानदार मेम्बरों ने कभी इसका ख्याल ही नहीं किया।

बेनीमाधव— तब तो उनका दिमाग़ और आसमान पर चढ़ जायेगा। योंतो बरसात में साईस घुड़सार में सोते भी हैं...तब तो...

उमाशंकर—तब आप सोइयेगा। अपना काम...

बेनीमाधव— जी हां हम लोग घास करेंगे. लीद फेकेंगे...क्यों यही न?

उमाशंकर— तो इसमें हर्ज क्या है? टांगा पर चलेंगे आप और...

बेनीमाधव— लीद फेंकेगा कौन? कह डालो! तुम लोगों के स्वराज्य में लोगों की इज्जत तो रहेगी नहीं—यह तो मालूम... बात है!

उमाशंकर—आप लोग इज्ज़त का ठीक मतलब नहीं समझते।

बेनीमाधव—ज़रा सुनूं भी तुमने क्या समझा है?

उमाशंकर—मेरी समझ में तो असली इज्ज़त—मनुष्य की इज्ज़त करने में है— .. किसी को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ दबा कर उससे वह काम लेना जो ख़ुद नहीं कर सकते।

बेनीमाधव—हुज़ूर तनख़ाह दी जाती है मुफ़्त नहीं।

उमाशंकर—इसी लिये साम्यवाद का तूफ़ान उमड़ा चला आ रहा है। आप लोगों को अभी नहीं सूझता किसी दिन रूस की हालत होगी—तब कहा जायेगा—ग़रीबों ने ज़ुल्म किया, लूट लिया—फूँक दिया मार डाले...वह नौबत क्यों आने पाये आप लोग...पहले ही से सम्हल जाइये।

बेनीमाधव—अब बन्दूक का लाइसेन्स जल्दी मिल जाता है कोई हर्ज नहीं। मैं तो वही...

ढोल गँवार शूद्र पशुनारी, ये सब ताड़न के अधिकारी—गोसाईं जी ने समझ कर लिखा था। मैं तो यही समझता हूँ ठीक है। इनके साथ मेहरबानी किये नहीं कि ये सिर चढ़े।

उमाशंकर—बन्दूक का लाइसेन्स वहां भी था। [कुछ सोचकर] वकील साहब मनुष्य बनना सीखिये।

बेनीमाधव—क्षमा कीजिये मैं उपदेश नहीं चाहता। इसीलिये यहां के किसी भी प्रतिष्ठित आदमी ने आपको वोट नहीं दिया। सबको मालूम है कि आप अमीरों के लिये कुछ नहीं करेंगे।

उमाशंकर—अमीरों के लिये बहुत होचुका है. अब कुछ गरीबों के लिये होना चाहिये. मुझे इसकी इच्छाही क्यों हुई ? केवल उन्हीं के लिये। केवल ग़रीबों के लिये। उनकी हालत जब तक सुधारी नहीं जासकती तब तक देश. ...देश के सर्वस्व वही हैं उन्हीं से देश है।

बेनीमाधव—इसका मतलब यह कि अगर कहीं दुर्भाग्य से आप स्वतन्त्र भारत के नायक चुने जायँ तो आप अमीरों को निकाल बाहर करेंगे।

उमाशंकर—देखिये.. इधर..स्वतन्त्र भारत अभी स्वप्न है। मामूली बात में इतने आगे बढ़ जाना .. ..यहां अमीरों के निकाल देने का सवाल नहीं.....ग़रीबों के बसाने का सवाल है। इतने बड़े संसार में उनके लिये कहीं आशा है या नहीं ? देखना यह है।

बेनीमाधव—मेरी समझ में तो नहीं है--वे इस लायक नहीं... पशुओं का गरोह।

उमाशंकर—मेरी समझ में तो है। उन्हें पशु बनाया किसने ?

बेनीमाधव—[रुखे स्वर में] किसने—?

उमाशंकर—हम लोगों ने.....हम लोग जो अपने को सभ्य, शिक्षित और प्रतिष्ठित कहते हैं। [कुछ सोचने लगते हैं]

बेनीमाधव- [उनके मुँह की ओर देखकर] मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

उमाशंकर—[चौंककर] अयं कैसी आशा थी ?

बेनीमाधव—यही कि आपसे हमलोगों की हानि होगी।

उमाशंकर—ऐसी आशा तो मुझे भी नहीं है कि मुझसे आप लोगों की हानि होगी।

बेनीमाधव—तुम कह क्या रहे हो समझ में नहीं आता।

उमाशंकर—क्या ?

बेनीमाधव—तुम समझो—हमलोगों के खिलाफ़ तुम इन गँवारों को भड़काओगे [थोड़ी देर रुककर] वे हमें धक्का देते चलेंगे, बात बात में जवाब देंगे तुम......तुम यह करोगे ? तुम्हें वोट देकर या तुम्हारे लिये कोशिश कर मैंने . [चुप हो जाते हैं]

उमाशंकर—ग़लती की-- शायद यही कहना चाहते थे। लेकिन मुझे मालूम है न तो आपने मेरे लिये कोईकोशिश की और न मुझे अपनी ही वोट दी। इसका उलाहना देना मैं नहीं चाहता था लेकिन मजबूर होकर-इसका मुझे दुःख भी नहीं है। मैं जानताहूँ आप लोगों का मतलब मुझसे नहीं निकलेगा। इसलिये अगर आप लोग मुझे वोट न दें तो कोई बुराई नहीं। हम लोग अपने सिद्धान्त के लिये भी लड़ना नहीं जानते। हर एक बात को व्यक्तिगत बना कर बिगाड़ देते हैं। आपके जो सिद्धान्त हैं...वही आपके लड़कों के भी हों...आपकी स्त्री के हों.. आप के मित्रों और सम्बन्धियों के भी हों। क्यों ? सब कोई विचारों में आप के ग़ुलाम क्यों हों ?

बेनीमाधव—इसलिए कि समाज की इसी में भलाई है।

उमाशंकर—बिल्कुल नहीं—समाज में बुराई इसीलिये बढ़ रही है कि दस पांच गुमराह जो सोचते हैं कि उन्हीं का कहना और सोचना ठीक हो सकता है सब जगह अपना ही सिक्का देखना चाहते हैं। औरों को न सोचने देते हैं न कहने देते हैं इसका नतीजा? ... ... ज्यों ज्यों लोगों का हक़ छीना जाता है...थोड़े आदमियों पर उसका बोझ पड़ता जाता है। वे अब अपना अलग समाज बना लेते हैं। दुनिया की सभी अच्छी चीजें, धन, दौलत, पद, इज्जत, सब प्रकार की सुविधायें, सुन्दर मकान, सुन्दर सड़कें, एक शब्द में [रुककर] जो कुछ उपयोगी और शानदार सब उनके लिये और बचे हुए.... मनुष्य... ...जैसा आपने .....कहा था..... पशु ... गंवार..... असभ्य नालायक.. ..... । [एकाएक खड़े होकर टहलने लगते हैं।]

बेनीमाधव—[उनकी ओर उपेक्षा की नज़र से देखकर] दुनियाँ स्वर्ग नहीं होगी।

उमाशंकर—[नज़दीक आकर] इस लिये नरक हो जाय?

बेनीमाधव—नरक तो है ही।

उमाशंकर—समझने की बात है।

बेनीमाधव—देखता हूँ कैसे स्वर्ग बनाते हो?

उमाशंकर—आप देख नहीं सकेंगे। आप की आँखों ने अब

तक जो देखा है उसके आगे नहीं बढ़ सकेंगी। आप लोगों ने अपनी जंज़ीरों को फूलों से सजा दिया है—इसलिये कि ख़ूबसूरत देख पड़ें। उन्हें तोड़कर एक बार बाहर निकल आइये, यहां खुले आसमान के नीचे—और तब देखिये अपनी ओर और उन गँवारों या पशुओं की ओर जिन्हें आप कहते हैं · वही मनुष्य, वही हृदय, मस्तिष्क, वही जिन्दगी.....वही ज़रूरतें—[उत्तेजित स्वर में] यहाँ आइये... .....बस देखिये ..... दुनियाँ स्वर्ग हो उठती है या नहीं।

बेनीमाधव—[कुछ सोचकर] नहीं—मैं यहाँ नहीं रह सकता.....ऐसी बातें ओफ़..... ...सिर में चक्कर आने लगा। [उठते हैं]

उमाशंकर—[उनका हाथ पकड़कर] चक्कर क्यों आने लगा। अपने मतलब के लिये इतनी ज्यादती·····मनुष्य होकर—[उनका हाथ हिलाकर] सब के भीतर ईश्वर है किसी का रास्ता न रोको। मनुष्य बनो। तुम्हारा हृदय तो अच्छा है लेकिन संस्कार.....

बेनीमाधव—जाने दो इस बात को। [आशा की ओर इशारा कर] ज़हर मिला कहाँ ?

उमाशङ्कर—फिर वही बात ? कितने महत्व की बातें हो रही थीं। बिगाड़ दिया.....

बेनीमाधव—इसके बतलाने में क्या हर्ज है ?

उमाशङ्कर—उस विषय में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।

[मनोहर का सीढ़ियों के ऊपर निकलना हाथ उठा कर] धीरे से

मनोहर—[पैर दबा कर उनके पास आताहै कुछ कहना चहता है]

उमाशङ्कर—[हाथ उठा कर] चुप जाग जायेंगी।

बेनीमाधव—डाक्टर साहब तो कह रहे थे...उन्होंने ज़हर दिया था!

उमाशङ्कर—झूठ.. हो नहीं सकता।

बेनीमाधव—ख़ुद कह रहे थे आप के चचा भी थे वहीं—सब के सामने? अगर मुक़दमा चला तो डाक्टर साहब फँसेंगे।

उमाशङ्कर—मुक़दमा आज नहीं चल रहा है?

बेनीमाधव—नहीं ...लेकिन...

उमाशङ्कर—लकिन की ज़रूरत नहीं है···आज उसकी बात मैं नहीं सुनूंगा मुक़दमा चलेगा...आप से राय माँगूँगा तो कहियेगा। अभी नहीं। आज तो मैं शान्ति से...

बेनीमाधव—आपको मालूम होना चाहिये...मैं सरकारी वकील हूँ—यह मामला मेरे ही हाथ में ..

उमाशङ्कर—ठीक है तब जिसे चाहियेगा...फाँसी दे दीजियेगा इस धमकी की ज़रूरत अभी नहीं है।

बेनीमाधव—कभी पड़ेगी।

उमाशङ्कर—जब पड़ेगी देखा जायगा। इस समय आप क्षमा करें।

वेनीमाधव—मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ।

उमाशङ्कर—[पैर पटक कर] चुप रहिये—मैं अपनी भलाई नहीं चाहता। एक बात और है आज से आप दोस्तों की बातें करने न आया करें। मैं बहुत हैरान...

वेनीमाधव—[क्रोध से देखते हुए] मेरा अपमान इस तरह... मित्र होकर अच्छा।

उमाशङ्कर—मित्र होकर नहीं, शत्रु होकर...गोकि मेरी निजी भाषा में यह शब्द नहीं है। धीरे से जाओ।

[वेनीमाधव का ज़ोर से पैर पटकते हुये प्रस्थान]

उमाशंकर—[कुर्सी पर बैठ कर] क्या है ? कहो...

मनोहर—मास्टर साहब आये हैं...

उमाशंकर—आये हैं ? नीचे हैं ?

मनोहर—हां—

उमाशंकर—कोई और है ?

मनोहर—मास्टर साहब और एक आदमी और...उस दिन जो आये थे ? मास्टर साहब के साथ।

उमाशंकर—मुरारी सिंह हेडमास्टर। अच्छा चलो आ रहा हूँ।

[मनोहर का प्रस्थान]

[कुछ देर तक सोच कर] मनुष्य की अहमन्यता...[खड़े हो कर ऊपर देखने लगते हैं। दो चार बार इधर उधर टहलते हैं। कुर्सी पकड़ कर खड़े होते हैं और बायें हाथ की उंगलियों से कई बार अपना सिर ठोंकते हैं फिर कमरे में आकर आशा की चारपाई के पास खड़े होकर उसकी ओर देखते हैं—धीरे धीरे कई बार मसहरी हिलाते हैं। थोड़ी देर रुक कर—उसकी चारपाई के पास झुक कर कुछ आहट लेना चाहते हैं। आशा करवट बदलती है। उमाशंकर सीधे खड़े होते हैं। थोड़ी देर चुप चाप खड़े रहते हैं और फिर धीरे धीरे नीचे चले जाते हैं। [थोड़ी देर सन्नाटा—आशा कई बार करवट बदलती है.. चारपाई मर मरा उठती है।]

आशा—जै शिव ..जै शिव [चारपाई पर उठ कर बैठती है मसहरी हटा कर बाहर निकलती है। उसके बाल इधर उधर मुंह पर, कन्धे पर, छाती पर और पीठ पर तितर बितर, मुंह सूखा हुआ और पीला मालूम हो रहा है। बाहर छत की ओर जाना चाहती है, लेकिन दो क़दम चलने के बाद वहीं फर्श पर बैठ जाती है।]

[मनोहर का प्रवेश]

मनोहर—[उसे देख कर] जाग गईं, तब तो मारेंगे— [पीछे लौटना चाहता है]

आशा—[हाथ हिला कर उसे बुलाती है मनोहर चुपचाप खड़ा हो जाता है—उसके पास नहीं जाता] आओ.. सुनो !

मनोहर—बाबू जी मारेंगे ?

आशा—क्यों ?

मनोहर—कहेंगे जगा दिया।

आशा—नहीं...मैं कहदूँगी . तुमने नहीं।

[मनोहर उसके पास जाकर खड़ा होता है, आशा उसके कन्धे पर हाथ रखती है]

मनोहर—कहा।

आशा—कुछ नहीं—यहीं खड़े रहो।

मनोहर—माँ के पास नहीं जाओगी ?

आशादेवी—[उसके कन्धे को ठोंकते हुये] अभी नहीं...[उसके मुँह की ओर देखने लगती है।]

मनोहर—कहती तो थी जाने के लिये। जाने को कहो तो तुम्हें माँ कहूँगा।

आशादेवी—अब मैं तुम्हारी माँ नहीं हो सकती...मैं अब... उसके लायक . नहीं।

मनोहर—अस्पताल क्यों गई ? नहीं जाती तो मां के पास चली जाता न ?

आशादेवी—हाँ तब तो चली जाती.. लेकिन ..

मनोहर—फिर जहर खा लेना . अस्पताल न जाना ! मुझे भी जहर देना .. मैं भी ..चलूंगा।

आशादेवी—तुम्हें ? हे भगवान ! [धीरे धीरे उसकी देह पर हाथ फेरने लगती है साड़ा पर किसी के पैरों की आवाज़ होती है।]

मनोहर— [चौंक कर] आ रहे हैं ..बाबू जी आ रहे हैं छोड़ो···[छुड़ा कर भाग जाता है]

डाक्टर—[सीढ़ी पर] मनोहर ! चलो ।

मनोहर—नहीं...नहीं...नीचे...

[डाक्टर का प्रवेश डाक्टर केवल एक चदरा डाले हैं]

डाक्टर—[आशा के पास जा कर] यहां बैठी हैं—सुना था ·· सो रही हैं ।

[आशा सिर नीचे कर चुपचाप बैठी रहती है । छत पर से दो कुर्सियां लाकर कमरे में रखते हुये] बैठिये । [आशा फिर भी नहीं उठती ।] बैठिये कुछ कहना है ।

आशादेवी—[उसी तरह नीचे बैठी हुई] अब कुछ न कहिये ।

डाक्टर—बस यही आखिरी बार ।

आशादेवी—अच्छा कहिये ।

डाक्टर—[उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुये] बैठिये यहाँ तब...

आशादेवी—[कुर्सी पर बैठकर] क्या कहेंगे अब ?

डाक्टर—सुनिये.. आपने ज़हर खाकर मेरी आत्मा को साफ़ कर दिया है । बहुत दिनों की बुराई निकल गई अब मैं मनुष्य हूँ । लेकिन मेरी मनुष्यता में अभी एक कमी है ।

आशादेवी—वह क्या ?

डाक्टर—आप की माफ़ी—मुझे माफ़ कर दीजिये । मैंने आप के साथ [उनका स्वर कांपने लगता है]

आशादेवी—[प्रसन्न होकर] सच्चे दिल से कह रहे हैं ... डाक्टर साहब ?

डाक्टर—हाँ.. जहां तक इस जीवन में सम्भव है। मैंने कितने बुरे काम किये ओफ़। [फिर भी उनका स्वर काँपने लगता है]

आशादेवी— [कुछ सोच कर] लेकिन अभी यह नहीं हो सकता। मैं अभी आप को माफ़ करने की...मुझे अभी अधिकार नहीं कि आपको माफ़ कर सकूं। मुझे भी मनुष्य बन लेने दीजिये।

डाक्टर—वह कब ?

आशादेवी—अभी...आजही...इसी रात को। अगर वे मुझे क्षमा करदें तो...अगर कर दें तो...अगर वे मुझे क्षमा कर दें तो...[कुछ सोच कर] तो मैं भी मनुष्य बन जाऊँ। डाक्टर साहब वे मेरे ईश्वर हैं...देवता हैं...उनको पाने के लिए...लेकिन नहीं मैं उन्हें अपवित्र नहीं करूंगी।

डाक्टर—[एकाएक काँप कर] लेकिन वह कैसे...कैसे...हो सकेगा वह...?

आशादेवी—मैं उनसे सब कह दूंगी...साफ़ साफ़।

डाक्टर—अयं सब कह दें गी ? [तेजी से साँस लेने लगते हैं]

आशादेवी—[उनका हाथ अपने हाथ में लेकर] घबड़ाइये मत वे गंगा की तरह सब कुछ धो दें गे। वही केवल...वही...और कोई यह दाग धो नहीं सकता।

डाक्टर—लेकिन—[कुछ सोच कर] उनका विश्वास .. कितना ज्यादा...नहीं...नहीं, नहीं, वह तो मेरा मरना होगा।

आशादेवी—तब...

डाक्टर—मैं भाग जाऊँगा.. जहाँ फिर कभी उनके सामने न आ सकूं आज की रात नहीं...आज की रात नहीं...कल मैं कहीं जाऊंगा [उसकी ओर देखते हुए] मेरी रक्षा कीजिये कल.. कल कल कह दीजियेगा। ओफ़ ! जब वे मेरी ओर देखेंगे। आज नहीं...कल...उनकी आँखों से आग निकलेगी...मैं जलने लगूंगा...आज नहीं...आज नहीं... [स्वर के साथ ही साथ उनका सारा शरीर काँपने लगता है]

आशादेवी—हाँ...हां...क्या कर रहे हैं ? हम दोनों की मुक्ति हो नहीं सकती, जब तक कि हमारा पाप उनके सामने खुल न जाय। डाक्टर साहब वे देवता हैं...आपने उन्हें पहचाना नहीं।

डाक्टर—हो सकता है.. शायद हैं भी। लेकिन मैं उनके सामने खड़ा नहीं हो सकूंगा। मैं हिम्मत नहीं कर सकता।

आशादेवी—तब तो अभी आप मनुष्य नहीं हुये। मनुष्य का हृदय इतना कमज़ोर नहीं होता.. जो अपना पाप न सम्हाल सके।

डाक्टर—[कुर्सी पर झुक कर हाथों में अपना मुंह छिपा लेते हैं]

आशा—[उनकी ओर देखती हुई] डाक्टर साहब ! [डाक्टर उसी तरह चुप चाप खड़े रहते हैं]

आशा—देखिये भी इधर। [डाक्टर—फिर भी कोई उत्तर नहीं देते।]

आशा—वाह ! [उनकी ओर ध्यान से देखने लगती है]

डाक्टर—[आशा की ओर देखते हुये] अभी नहीं—अभी मेरा हृदय इसके लिये तैयार नहीं है।

आशा—[सिर हिलाती हुई] अभी तैयार नहीं है, तब आप इसी तरह नरक में पड़े रहेंगे। उस पाप को धोकर सदैव के लिये सिर ऊंचा क्यों नहीं कर लेते ? घड़ी भर की तकलीफ़ और फिर मुक्ति कितनी सुन्दर चीज़···उसके लिये ..उसके लिये...यह कमज़ोरी ?

डाक्टर—[विक्षिप्त होकर...कमरे में टहलते हैं—बाहर छत पर जाते हैं। आशा उठ कर खड़ी होती है—धीरे धीरे चारपाई पर जाकर लेट जाती है। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहता है।]

[डाक्टर का प्रवेश]

डाक्टर—[आशा की चारपाई के पास पहुँच कर] तो मैं जा रहा हूँ...कल कोई नहीं जानेगा...मैं कहां रहूँगा। [जाना चाहते हैं]

आशा—डाक्टर साहब...एक बात और...सुनिये...सुनिये... नहीं लौटेंगे ?

डाक्टर—[उसके पास आकर] क्या है ? [रुखे स्वर में] मैं अब यहां ठहर नहीं सकता।

आशा—मुझे छोड़ कर चले जायेंगे ?

डाक्टर—इसका मतलब ?

आशा—यह आपसे हो सकेगा ?

डाक्टर—मैं नहीं समझता ।

आशा—अपने हृदय से पूछिये ।

डाक्टर—वह तो बेहोश है ।

आशा—वह बोल रहा है...आप सुन नहीं पाते ।

डाक्टर—अच्छा यही सही...

आशा—इतनी रुखाई ?

डाक्टर—आप चाहती क्या हैं ?

आशादेवी—मैं ?

डाक्टर—[रूखे स्वर में] जी हाँ आप ।

आशादेवी—मैं चाहती हूँ कि हम दोनों पापी प्राणी...एक साथ...

डाक्टर—मैं समझ नहीं रहा हूँ ।

आशादेवी—[चारपाई से उतर कर खड़ी होती है] किस तरह समझाऊं हुजूर ?

डाक्टर—मुझे क्या मालूम ?

आशादेवी—अच्छा तो सुनो [निस्संकोच] मैं चाहती हूँ कि जिस तरह हमारा पाप एक है . उसी तरह हमारा जीवन भी एक हो जाय । तुमने कभी मुझसे कहा था कि मेरे लिये तुम पहले

पुरुष हो। उस समय मैं तुमको घृणा करती थी—आज मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ। तुम मेरे लिये पहले पुरुष हो—यह सच है। अब तुम मेरे लिये अन्तिम पुरुष भी रहो। मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ... [उनका हाथ पकड कर] तुम मेरे प्रियतम हो।

डाक्टर—हूँ

आशादेवी—क्या सोच रहे हो [उनके कन्धे पर हाथ रखती है] बोलो।

डाक्टर—सोच रहा हूँ—दुनियां वही है या नहीं—जो कल थी। आज से दो महीने पहले थी।

आशादेवी—नहीं—वह नहीं है ... आज से दस मिनट पहले जो दुनियां थी वह नहीं है।

डाक्टर—लेकिन हम लोग साथ रहेंगे कैसे ? [कुछ सोचने लगता है]

आशादेवी—हम लोग विवाह करेंगे...तुम भी अविवाहित हो और मैं भी।

डाक्टर—लोग क्या कहेंगे ?

आशादेवी—हँसी उड़ायेंगे...बदनामी करेंगे।

डाक्टर—तब ?

आशादेवी—तब क्या ? कुछ नहीं। हमारी अपनी जिन्दगी रहेगी। कोई क्या कहता है...इसकी चिन्ता हम लोग नहीं करेंगे ! हम लोग तो सचमुच बुरे हैं...कहने वाले तो उनको भी

बुरा कहते हैं—जो बुराई जानते ही नहीं...जैसे शर्मा जी को। मेरे लिये वे इतने बदनाम हुए। किसको पता है कि आज तक उन्होंने मेरी परछाईं भी नहीं छुई।

डाक्टर—सचमुच ?

आशादेवी—आश्चर्य क्या है ?—मैं पहले कह चुकी हूँ वे देवता हैं। अगर वे मनुष्य होते—तब तो मैं इतने नीचे नहीं गिरती। मैं चाहती ही रह गई कि वह एक बार मेरी ओर देख कर मुस्करा दें—या एक बार मेरी कोई उंगली ज़रा सा भी दबा दें। उन्होंने न मालूम कै बार मेरा हाथ पकड़ा होगा। मैं काँप उठती थी.. लेकिन उन पर कोई असर नहीं.. जैसे पत्थर के हाथ में मेरा हाथ हो। इसी लिये वे देवता हैं।

डाक्टर—हूँ—ऐसा है ? सचमुच...देवता हैं। [जैसे कुछ सुन कर] आ रहे हैं...मैं जा रहा हूँ। [डाक्टर का तेजी से प्रस्थान]

आशादेवी—[इधर उधर बेचैन होकर टहलती है। कभी कुर्सी पकड़ कर खड़ी होती है तो कभी दरवाज़ा, कभी दीवाल पर सिर टेकती है। कमरे के बीच में कुर्सी के सहारे खड़ी होकर] मुक्ति ? [सिर हिला कर] नहीं मृत्यु ?

[उमाशङ्कर का प्रवेश]

उमाशंकर—कैसी तबियत है ?

आशादेवी—[मुस्करा कर] सब आप की कृपा...

उमाशंकर—[सन्देह से उसकी ओर देखते हैं] गर्मी ज्यादा तो नहीं मालूम होती ?

आशादेवी—[मीठे स्वर में] जी नहीं—अब अच्छा है।

[डाक्टर और देवकी नन्दन का प्रवेश]

डाक्टर—तो आप सचमुच उस बेचारे को बरखास्त करेंगे ?

उमाशंकर—डाक्टर साहब मैं कोई बात झूठ मूठ नहीं कहता। इसकी आदत मुझे नहीं है। मुरारीसिंह का काम है लड़कों को पढ़ाना। चुनाव में आन्दोलन करना नहीं। मैं जानता हूँ उन्होंने मेरे लिये बड़ी कोशिश की। लेकिन मैं इसके लिये ईनाम नहीं दूंगा।

देवकीनन्दन—इस बार क्षमा तो कर सकते हैं।

उमाशंकर—हां अगर वह मेरी अपनी बुराई हो। सिद्धान्त की बुराई मैं नहीं सह सकता।

डाक्टर—लेकिन .

उमाशंकर—[रोक कर] चुप रहिये। इस बारे में मैं और कुछ कहना सुनना नहीं चाहता। मैंने कह दिया। कल मैं उन्हें बरखास्त करूँगा। आप लोग जाइये। मैं बहुत थक गया हूँ। बोलने की तबियत नहीं चाहती।

[डाक्टर और देवकीनन्दन का प्रस्थान]

आशादेवी—डाक्टर साहब थोड़ी देर नीचे ठहरिये ! [उमाशंकर की ओर देख कर] मुझे भी कुछ कहना है !

उमाशंकर—अब आज नहीं कल...

आशादेवी—आज ही...

उमाशंकर—आज नहीं...मैं...

आशादेवी—मैं अब रुक नहीं सकती।

उमाशंकर—[सन्देह से उसकी ओर देखते हुए] आज तो क्षमा...

आशादेवी—जी नहीं...बिल्कुल नहीं। मैं मरी जा रही हूँ। उस बोझ को मैं आज हलका करूँगी।

उमाशङ्कर—अच्छा—कहो।

आशादेवी—इस तरह नहीं। [उमाशंकर का हाथ पकड़ कर] यहां...इस जगह...इस कुर्सी पर बैठो। मैं जो कह रही हूँ—वह ऐसी बात नहीं है...जिसे तुम खड़े खड़े सम्हाल सको। [उन्हें कुर्सी के पास लाकर] बैठो। मेरे देवता .....आज मैं तुम्हारी दुनियां उलट दूँगी।

उमाशङ्कर—[कुर्सी पर बैठते हुये] तुम्हे हो क्या गया? पागल हो रही हो क्या?

आशादेवी—बिल्कुल नहीं...आज तो अभी होश में आ रही हूँ। तीन महीने के पागलपन के बाद।

उमाशंकर—कहो भी क्या है?

आशादेवी—[कुर्सी पर बैठते हुये—उनका हाथ अपने हाथ में लेकर] तैयार हो जाओ सुनने के लिये।

उमाशङ्कर—मालूम होता है कुछ कहना नहीं है।

आशादेवी—मनोहर की मां.. कैसे मरी थी...? [रुककर] जानते हो ?

उमाशंकर—दो वर्ष तपेदिक़ से बीमार थी...

आशादेवी लेकिन वह तपेदिक़ से मरी नहीं।

उमाशंकर [सन्देह से] तब ?

आशादेवी—[उनकी ओर एकटक देखती हुई] मैंने—उसे... ज़हर दिया था।

उमाशङ्कर—[उठते हुये] अयँ।

आशादेवी—[उनका हाथ खींचती हुई] बैठ कर ..बैठ कर . सब सुन लो तब।

उमाशङ्कर—[बैठते हुये] ज़हर दिया था ?

आशादेवी—हां—उसी का बचा जहर मैंने कल खा लिया था ?

उमाशंकर—तो वह तपेदिक़ से नहीं मरी ? [आशा की ओर ध्यान से देखने लगते हैं]

आशादेवी-- अभी नहीं ..अभी मुझे दण्ड न दो सुन लो सब...मेरे पापों का दण्ड हो नहीं सकता।

उमाशंकर—लेकिन ज़हर दिया क्यों ?

आशादेवी—तुम्हारे लिये। मैं तुम्हे प्रेम करती थी।

उमाशंकर—इसी लिये उसे ज़हर दिया ?

आशादेवी—हां मैं चाहती थी...मेरे प्रेम में कोई हिस्सेदार न बने। मैंने अपना हृदय निकाल कर तुम्हारे चरणों में रख दिया। लेकिन तुमने उसका ख्याल नहीं किया। जिस समय मैं तुम्हारे प्रेम के लिये—तुम्हारी मुस्कराहट के लिये—तुम्हारे स्पर्श के लिये या स्त्री अपने पुरुष से जो कुछ चाहती है ..उसके लिये मरी जा रही थी...उस समय तुम मेरा सम्मान करते थे..... मेरी..... प्रशंसा करते थे। मेरे सामने तुम उस तरह जाते थे.....जैसे...लोग...अदालत में जाते हैं।

उमाशङ्कर—बस अब अधिक नहीं। [सिर हिलाते हैं]

आशादेवी—अभी बहुत। जो चाहो दण्ड दो लेकिन सब सुन कर। मैं अपने पाप की पूरा सज़ा चाहती हूँ। तुम सो जाते थे...और मैं रात भर इस करवट से उस करवट . सोचती थी अब आते हो...अब आते हो...बिल्ली की आवाज़ भी तुम्हारे पैरों की अवाज़ मालूम होती थी मेरा हृदय कांपने लगता था.. शरीर कांपने लगता था.. एक एक रोयें खड़े हो जाते थे...सिर से पसीना चल पड़ता था ! [उसका स्वर काँपने लगता है।]

उमाशंकर—बस...सुनो भी...

आशादेवी—नहीं पहले मुझे कह लेने दो। कोई रात ऐसी नहीं बीती कि मैं तुम्हारी चारपाई के पास घंटो खड़ी न रही हूँ—तुम्हारे पैताने अपना सिर रख देती थी—जब कभी तुम्हारा पैर मेरे मुंह पर पड़ जाता था . समझती थी वरदान मिल गया।

पूजा सफल हो गई। कभी कभी तुम्हारे पैर की उंगलियों पर आंख रखकर पलकों से उन्हें दबाती थी। [पलकों को ज़ोर से दबाती है—आखें बन्द हो जाती हैं।]

उमाशंकर—तो तुमने मेरे लिये उसे ज़हर दे दिया। मेरे बच्चे को अनाथ कर दिया। उसकी तस्वीर लेकर रोता रहता है।

आशादेवी—हां—मैंने समझा उसके मरजाने पर तुम्हें पा सकूंगी। लेकिन—[एकाएक फ़र्श पर बैठ कर उनके पैरों पर अपना सिर रख देती है।]

उमाशंकर—[उसके सिर पर हाथ रख कर] उठो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ—आज से मेरे बच्चे की तुम्हीं मां हो। उठो—[झुक कर उसे उठाते हैं।]

आशादेवी—[दो क़दम पीछे हट कर] उस लायक मैं अब नहीं हूँ अगर मैं उस लायक होती...उसके बाद मैंने जो पाप किया...हाय!

उमाशंकर—[चौंक कर] उसके बाद जो पाप किया?

आशादेवी—हाँ—डाक्टर से मैंने ज़हर लिया था—इस लिये कि वे तुमसे कह न दें...उसे छिपाने के लिये मैंने उन्हें अपनी पवित्रता...अपना शरीर...स्त्री का जो सब से बड़ा भरोसा है...वही...अपना चरित्र दे दिया। हत्या से कहीं भयंकर पाप...मैंने...व्यभिचार...डाक्टर के...साथ.

उमाशंकर—अयं...डाक्टर के साथ ? [तेज़ी से उठ कर बाहर जाते हैं—लालटेन लेकर अपने कमरे में प्रवेश करते हैं—और उसी क्षण हाथ में पिस्तौल लेकर निकलते हैं। आशा इसी बीच में दरवाज़े पर जाकर खड़ी हो जाती है।]

उमाशङ्कर—हट जाओ...हट जाओ.....मेरे साथ विश्वास-घात।

आशादेवी—छाती आगे की ओर बढ़ाती हुई पहले मुझे मारो।

उमाशंकर—कह रहा हूँ—जाने दो...नहीं तो।

आशादेवी—मैं भी तो कह रही हूँ.....पहले मुझे मारो। उसी बेचारे ने विश्वासघात किया है—मैंने नहीं ? अगर विश्वास-घात का दण्ड हत्या है तो पहले मुझे क्यों नहीं मारते ?

उमाशंकर—तुम्हें नहीं मारूँगा।

आशादेवा—मुझे नहीं मारोगे और उसे मारोगे क्यों भगवान.....ज़रा मेरी ओर देखो तो...

उमाशंकर—[उसकी ओर देखते हुए] कहो।

आशादेवी—हत्या करोगे ?

उमाशंकर—हाँ...

आशादेवी—लेकिन हत्या करने से भी बदला नहीं निकलेगा। मैं अब पवित्र नहीं हो सकती.....अब तो मैं सदैव के लिये... तुमसे अलग.....

उमाशंकर—क्यों ?

आशादेवी—तुम मेरे उपास्यदेव हो.....तुम्हें छूने का भी अधिकार मुझे अब नहीं.....और फिर मैं डाक्टर को प्रेम करने लगी हूँ। मेरे लिये वही पहले पुरुष.....

उमाशंकर—अयं [पिस्तौल दूर फेंक देते हैं] तुम उसे प्रेम करती हो ? उस पापी को जिसने तुम्हारा सतीत्व···

आशादेवी—अभी मेरे साथ सतीत्व का सवाल नहीं था...मैं अविवाहित हूँ ..

उमाशंकर— [कुर्सी पर बैठते हुए] हूँ.....[कुर्सी पर सिर झुकाकर ऊपर छत की ओर देखने लगते हैं।]

आशादेवी— [उनके नज़दीक जाकर] तुम चाहो तो हम दोनों का पाप धो सकते हो...तुम पवित्र हो...गङ्गा से भी बढ़ कर... क्षमा करो..... आशीर्वाद दो। हम दोनों के हृदय से पाप निकल जाय और हम लोग साथ साथ.....हम दोनों की ज़िन्दगी... एक.....

उमाशंकर—तुम्हारा मतलब क्या है ?

आशादेवी—मैं डाक्टर के साथ रहूँगी...

उमाशंकर—किस तरह.....?

आशादेवी—उनकी स्त्री बन कर। हम दोनों विवाह करेंगे। हम दोनों पाप में एक हुए थे ..वह पाप मिट नहीं सकता...जब

तक कि हम दोनों ज़िन्दगी में एक न हो जाँयं . पाप में पुण्य में, सब में सार्थी...

उमाशंकर—[उद्वेग से] आशा !

आशादेवी—[कांपते हुये स्वर में] कहो देव !

उमाशंकर—[क्षण भर उसकी ओर देखकर.. उनका मुँह लाल हो उठता है—आंखों से चमक निकलने लगती है] लेकिन . मै भी तुम्हें...प्रेम..

आशादेवी—हे ईश्वर -- कैसा था वह प्रेम भगवन ? कैसा था ? जिसमे एकबार भी छाती नहीं धड़की । एकबार भी रोमांच नहीं हुआ । एकबार भी आंखे नहीं भीगीं ? [एकटक उमाशंकर की ओर देखने लगती है]

उमाशंङ्कर—उसीका दण्ड दे रही हो ?

आशादेवी—दण्ड ? [कुछ सोचकर] तुम्हे ? [उनका हाथ पकड़कर] नहीं—यह न सोचो ।

उमाशङ्कर—तब क्या सोचूं । [निराश हो उठते हैं]

आशादेवी— तुम्हें दण्ड—मैंने अपने इस जीवन का नाश किया है...किसी बहुत बड़ी आशापर . उसके लिये ..

उमाशंकर—वह क्या है ?

आशादेवी—दूसरे जन्म में तुम्हें पाना ।

उमाशङ्कर—इस जन्म में छोड़कर ?

आशादेवी— यही तो मेरा त्याग है.. मैं अपने देवता को अपवित्र नहीं करूँगी।

[उमाशंकर उठकर बाहर छत पर जाते हैं। चुपचाप खड़े होकर ऊपर आकाश की ओर देखने लगते हैं। आशा वहीं कुर्सी पर बैठ जाती है]

आशादेवी—तो मैं जाती हूँ···

उमाशंकर—कहाँ ?

आशादेवी—अपने नये घर . अपने असली घर।

उमाशङ्कर—[लौटकर] कहाँ है असली घर ?

आशादेवी— डाक्टर के घर में। इस देव.. मन्दिर में अब रहना

उमाशङ्कर—[उसकी ओर देखते हुये] तो मैं अकेले रहूँगा ?

आशादेवी—[प्रसन्न होकर] हाँ देवता का स्वभाव है, अकेले रहना...गरोह बाँध कर तो भूत रहते हैं। [उठकर उमाशंकर के पैरों पर अपना सिर रख देती है। क्षणभर उसी हालत में—उमाशंकर झुककर उसके सिरपर हाथ रखना चाहते हैं। लेकिन फिर हाथ खींचकर खड़े हो जाते हैं। आशा उठकर धीरे धीरे सीढ़ी से नीचे उतर जाती है। उमाशंकर कई बार सिर हिलाते हैं— उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं। मनोहर का प्रवेश।]

उमाशंकर—[मनोहर को गोद में उठाकर उसका मुँह चूमते हुये] मेरे बच्चे ··[उसे छाती से लगाकर] आह ! तो यह मेरी मुक्ति...

परदा गिरता है।